संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : ९७
जनवरी २००१

हिन्दी

आस-पास में भी पढ़वायें, पुण्य के भागी बनें...

सत्य साँई बाबा पर आरोपों की आँधी...

पढ़ें पेज नं. २५

श्री सत्य साँई बाबा

संत श्री आसारामजी बापू

यह सब तीन गुणों में है।
तू तीन गुणों से पार हो जा अर्जुन!

त्रैगुण्यविषया वेदा
निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

(गीता : २.४५)

प्रसिद्ध कथाकार पूज्य मोरारी बापू के साथ पूज्य आसारामजी बापू।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ११
अंक : ९७
९ जनवरी २००१

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

तेरे चरणों से ही प्यार करें...

राम बिन आशा नहीं बिन आशा न राम।
'आशा' संग 'राम' मिले साँईं आसाराम॥
सारे जहाँ में तेरा दीदार करें,
हे प्रभु ! तुझसे ही प्यार करें।
हर कर्म साधना हो, पूजा हो,
तेरे लिए ही सारा व्यवहार करें॥
परहित, सेवा और सत्संग से,
आप अपने पर ही उपकार करें।
सम रहें 'हरि ॐ' आनंद में,
सुख-दुःख सहर्ष स्वीकार करें॥
अपने चरणों से लगाये रखना हमें,
बस यही विनती बार-बार करें।
माँगते यही इतना ही दो दाता,
तेरे चरणों से ही प्यार करें॥

- जितेन्द्र बिसेन, गोंदिया (महा.).

*

जीवन के सूत्र

तज दे विषय-विकार को, विषय है विष की खान।
विषय-भोग जो ना तजे, विषधर सम वही जान॥
तज दे जग की आस को, झूठी आस निरास।
चाह चूहड़ी ना तजे, ताको जम की फाँस॥
तज दे तम अहं को, लोभ मोह अभिमान।
भय शोक जो ना तजे, पड़े नरक की खान॥
मन से तज दे बंधुजन, झूठा जग व्यवहार।
संग साथ कोई ना चले, क्षणभंगुर संसार॥
तज दे मायाजाल को, नश्वर जग जंजाल।
कीर्ति कंचन कामिनी, बंधन सब विकराल॥
परनिंदा हिंसा ईर्ष्या, दुर्गुण दोजख जान।
करुणा क्षमा उपकार से, मिटे भेद अज्ञान॥
तज अनीति द्वैत को, वैरी सम कुसंग।
सत्य धर्म मनमीत हो, साचा धन सतसंग॥
तज क्रोध आवेश को, रोष में ही सब दोष।
मन मलिन कटु भावना से, बिखर जाय संतोष॥
तज चंचलता वासना, धर शील विनय विवेक।
संयम समता स्नेह से, कर जीवन में कुछ नेक॥
तज अज्ञान तिमिर को, है ब्रह्मज्ञान सुखसार।
प्रेम भक्ति विश्वास से, हो जीवन-नैया पार॥
तज दुर्मति मनमति को, कर सर्व सदा सम्मान।
गुरुमति से सुमति मिले, सद्बुद्धि गुरुज्ञान॥
तज छल कपट दंभ को, कर श्रद्धा प्रभु से प्यार।
सर्व में 'वह' रम रहा, जग का सिरजनहार॥

- जानकी (अमदावाद)

*

युवाधन सुरक्षा अभियान

उत्तिष्ठ वीर ! ऐ युवाधीर ! कब तक तू ऐसे सोएगा ?
जीवन की स्वर्णिम घड़ियों को, ऐसे ही क्या खोएगा ?
समय संग नहीं जोड़ स्वयं को, लापरवाह बनाएगा।
हाथ नहीं आएगा कुछ भी, रोता-रोता जाएगा॥
इसीलिए तो कहता हूँ, अरे युवाओं ! जागो।
भाग रहा है समय, साथ में तुम भी उसके भागो॥
हे क्रान्तिकार ! हे युगसृष्टा ! अपनी महिमा को जानो।
छुपी शक्तियाँ लाख तुम्हारे, मन में सच ही मानो॥
जगा शक्तियाँ मन की तुम, जग के हित उपयोग करो।
चाहे राज करो इस जग में, या फिर हरि से योग करो॥
ले अवलंबन ब्रह्मचर्य का, साहस से उन्हें जगा लो।
बागडोर अपने भारत की, अपने हाथ सँभालो॥

*

एकाग्र मन स्वतः प्रसन्न रहता है, बुद्धि का विकास होता है, जीवन भीतर से परितृप्त और जीने योग्य होता है। व्यक्ति का मन जितना एकाग्र होता है, समाज पर उसकी वाणी का, उसके हाव-भाव का, उसके क्रिया-कलापों का उतना ही गहरा प्रभाव पड़ता है। उसका जीवन चमक उठता है।

(आश्रम की 'अलख की ओर' पुस्तक से)

स्वप्न को स्वप्न जान लो

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

मानव का यह सहज स्वभाव है कि वह सदैव जाग्रत अवस्था का ही ख्याल करता है, जाग्रत को ही सुधारना चाहता है, जाग्रत में ही सुखी होना चाहता है । स्वप्न एवं सुषुप्ति का वह जरा भी ख्याल नहीं करता जबकि केवल जाग्रत अवस्था ही उसकी नहीं है, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था भी उसीकी है।

जैसे, आप जाग्रत अवस्था में सोचते हो कि 'यह मकान किसका है ? दुकान किसकी है ? उसने क्या किया ? उसने क्या कहा ?' आदि आदि, वैसे ही स्वप्न के बारे में भी सोचना शुरू कर दो कि 'यह स्वप्न कैसे आता है ?' हाँ... इसके लिए थोड़े अभ्यास की जरूरत है। यदि केवल तीन महीने तक आप दिन में सौ-सौ बार सोचो कि : 'जो कुछ किया, सब स्वप्न है... जो कुछ बोला, सब स्वप्न है...' तो जब आप स्वप्न देखोगे तब भी लगेगा कि 'यह स्वप्न है...' और आप स्वप्न से जाग जाओगे। स्वप्न को स्वप्न जान लिया तो यह जाग्रत भी वास्तव में तो है स्वप्न ही, फिर इसे भी स्वप्न मानना आसान हो जायेगा।

अभ्यास की बड़ी बलिहारी है !

आप जैसा-जैसा अभ्यास करते हो, वैसा-वैसा ही सब भासता है। आत्मदेव का चमत्कार है ही ऐसा कि जैसा-जैसा आप सोचते हो, वैसा-वैसा ही आपको भासता है। मित्र में मित्र की भावना दृढ़ होती है तभी वह मित्र दिखता है, हालाँकि वह किसीका शत्रु भी हो सकता है। वास्तव में, न वह शत्रु है, न मित्र किन्तु आपमें उसके प्रति मित्र की भावना है तो आपके लिए वह मित्र है और किसी में उसके प्रति शत्रु की भावना है तो उसके लिए वह शत्रु है। है तो वह एक ही, किन्तु दृष्टिभेद के कारण आप सबको अलग-अलग भासता है।

पाँच भूतों की नज़र से देखा जाये तो यह मानव शरीर इन्हीं तत्त्वों से बना एक पुतलामात्र है, किन्तु ज्ञानदृष्टि से देखा जाये तो वह अठखेलियाँ करता हुआ ब्रह्म ही है। कौन शत्रु और कौन मित्र ? कौन अपना और कौन पराया ? सब उसी आत्मदेव का खिलवाड़मात्र है। यह ऊँचे-में-ऊँची अवस्था है।

इस अवस्था को पाने के दो तरीके हैं : एक तो यह कि जो कुछ देखो तो सोचो : 'सब परमात्मा ही हैं... सब एक ही है... सब एक ही है...' इसको दोहराते जाओ। दूसरा तरीका है कि : 'सब मैं ही हूँ... सब मैं ही हूँ...' इसे दोहराते जाओ। दोनों ही तरीकों का अभ्यास करने से चित्त शांत होता जायेगा। अथवा तो 'सब स्वप्न है... सब स्वप्न है...' ऐसा भी सतत चिंतन कर सकते हो।

चाहे जो भी तरीका अपनाओ वह होना चाहिए भीतर से, केवल वाचिक नहीं। ऐसा नहीं कि रोज माला लेकर घुमाने बैठ गये कि 'सब स्वप्न है... सब स्वप्न है...' दिन में दस बार या सौ बार ऐसा जप कर दिया। नहीं नहीं, इससे काम नहीं चलेगा। चाहे एक बार भी कहो, किन्तु उसमें आपके प्राण होने चाहिए, आपकी पूरी सहनति होनी चाहिए। केवल एक बार ही सही, परन्तु पूरी श्रद्धा से कहोगे तो बहुत लाभ होगा। यदि सतत यही चिंतन करोगे तो भी ठीक है। वास्तविकता का भी ज्ञान हो जायेगा।

यदि आप मुक्त होना चाहते हो, जगत के जंजाल से छूटना चाहते हो, बुद्ध पुरुष की अवस्था का अनुभव करना चाहते हो, जन्म-मरण के चक्कर से छूटना चाहते हो, माता के गर्भ में उल्टे लटकने से बचना चाहते हो तो आपको इसका खूब गहरा अभ्यास करना चाहिए कि : 'सब सपना है... सब सपना है...'

विवेक से देखो तो बचपन सपना हो गया, युवावस्था सपना हो गई, कल की बात भी सपना हो गई और आज की प्रवृत्ति भी थोड़ी देर के बाद सपना हो जायेगी। सब बदलता जा रहा है, सपना होता जा रहा है किन्तु इन सबको देखनेवाला द्रष्टा, साक्षी, चैतन्य एक-का-एक है। वह इन बदलाहटों में भी नहीं बदलता। वही वास्तविक सत्य है। यदि इसको ठीक से पक्का कर लो तो फिर आपको क्रोध के समय इतना क्रोध नहीं होगा, उद्वेग के समय इतना उद्वेग नहीं होगा, लोभ के समय इतना लोभ नहीं होगा, मोह के समय इतना मोह नहीं होगा, अशांति के समय इतनी अशांति नहीं होगी। यदि आप ठीक से उस तत्त्व में टिक गये तो बाहर से युद्ध करते हुए भी भीतर से शांत रहोगे, ऐसा वह परम ज्ञान है आत्म-परमात्मदेव का।

सच्ची समझ

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

मनुष्य जन्म की सफलता किसमें है, यह बताते हुए भोले बाबा ने कहा है :

ममता नहीं पुत्रादि में, नहीं देह में अभिमान है।
आसक्ति विषयों में नहीं है, लाभ-हानि समान है।
है मान अरु अपमान सम, व्यवहार है सीधा सरल।
नहीं लेश जिसमें दम्भ छल, है जन्म उसका ही सफल।।

ऐसे लक्षणों से युक्त मनुष्य यदि गृहस्थ हो, तब भी साधु ही माना जायेगा। संत कबीरजी तो ऐसे साधु थे ही, उनकी पत्नी लोई माता भी कोई साधारण नारी नहीं थीं। कबीरजी के साथ रहते हुए उन्होंने भी अपना मनुष्य जन्म सफल कर लिया था। एकनाथजी के दैवी कार्यों में गिरजाबाई सदा प्रीतिपूर्वक संलग्न रहती थीं। पुण्यशीला लोई माता स्वयं भी सीधा-सादा, संयमी जीवन जीती थीं और कबीरजी के पुण्यकार्यों में कुशलतापूर्वक उत्साह एवं तत्परता से लगी रहती थीं।

जिनके जन्म-मरण का अन्त हो गया था, ऐसे संत कबीरजी के दर्शन-सत्संग करने-सुनने के लिए रोज कई लोग आते थे। सत्यस्वरूप आत्मा के अनुभव को छूकर आनेवाली उनकी वाणी सुनकर श्रद्धालु लोग आनंदित हो जाते थे।

कबीरजी सत्संग में आनेवाले सभी भक्तों को भोजन कराने का आग्रह रखते थे। उनकी आय इतनी नहीं थी कि खुद का गुजारा भी हो जाये और जो कोई आयें उनके भोजन-छाजन का खर्च भी आसानी से निकल जाये।

सत्संग में आनेवाले लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। कभी तो ऐसा होता था कि घर में खुद का भोजन पकाने के लिए भी पर्याप्त सीधा-सामान नहीं होता था और कबीरजी सत्संगियों के लिए भोजन की व्यवस्था करने को कह देते थे। तब लोई माता उधार लाकर भी जैसे-तैसे गृहस्थी की गाड़ी घसीटते हुए सत्संगियों को प्रेमपूर्वक भोजन कराती थीं।

लोई माता का ऐसा उदार, स्नेहपूर्ण व्यवहार देखकर कई स्त्रियों को आश्चर्य होता था कि कैसा जीवन है इनका ! न तो साधन-सुविधा है, न ही चैन-आराम है, फिर भी कोई फरियाद नहीं है। वे माइयाँ समझ नहीं पाती थीं कि ऐसा जीवन कैसे जी लेती हैं लोई माता ! उनके मन में लोई माता के प्रति कुछ ईर्ष्याभाव भी रहता होगा। वे सब मिलकर उनको उकसाने का प्रयत्न करतीं और कुछ-न-कुछ बकती रहतीं :

''अरे ! तुम तो साधु बाबा की पत्नी हो। तुम्हारे पास न तो अच्छे कपड़े हैं, न गहने हैं, न सुख-सुविधा है। हमको देखो, हम कितनी मौज से रहती हैं ! तुम क्यों दूसरों के लिए पच मरती हो और जीवन व्यर्थ गँवाती हो ?''

मूढ संसारी लोग कैसा-कैसा सोचते हैं !

ना भक्ति का ना ज्ञान का, ना योग का साधन किया।
खाने पहिनने में बिता, कुमार यौवन है दिया।
ईश्वर भजन से अन्य को भी, यत्नपूर्वक रोकता।
आकर नर पशुतुल्यता, कितनी बड़ी है मूर्खता !

उन माइयों को पता नहीं होगा कि ईश्वर में प्रीति होना, ईश्वर के रास्ते खुद चलना और दूसरों को भी ले चलना या ईश्वर के दैवी कार्यों में साझीदार होना कितने महान् भाग्य की बात है ! इसमें जीवन गँवाना नहीं है, इससे तो जीवन सँवर जाता है। जीवन तो वे लोग गँवा देते हैं, जो जीवनदाता परमात्मा को भूलकर खाने-पीने-सोने में, बाल-बच्चे-पत्नी-परिवार में और 'मेरा-तेरा' करने में लगे रहते हैं। लोग जिसके पीछे पूरा जीवन लगा देते हैं, उसे मौत आकर एक झटके में ही छीन लेती है, तब पछताते हुए इस संसार से विदा होना पड़ता है।

लोई माता उदार और सहनशील स्वभाव की थीं। सबका भला-बुरा सुन लेतीं, लेकिन कभी किसीको जवाब नहीं देती थीं। वे सदा अपने धर्ममय

कार्य में लगी रहती थीं। अपनी घर-गृहस्थी को सन्तोष एवं प्रेमपूर्वक निभातीं और कबीरजी की इच्छानुसार बिना झिझक के अभ्यागत की सेवा भी कर लेतीं।

एक बार लोई माता सत्संगियों के भोजन की व्यवस्था करने के लिए सीधा-सामान लेने बाजार गईं तो दुकानदार देने से इन्कार करने लगा। वह कहने लगा : ''पहले का उधार बहुत हो चुका है। अब और नहीं दे सकता।''

तब लोई माता उससे विनती करने लगीं :

''अबकी बार मैं सब चुकता कर दूँगी। अभी तो सीधा दे दो।''

लोई माता के अति आग्रह से दुकानदार ने सीधा तो दे ही दिया परन्तु पीछे से कुछ-का-कुछ सुनाने लगा। यह सुनकर दुकानदार की बहू आ गई। वह लोई माता से झगड़ा करने लगी। एक-दो माइयाँ और भी उसका साथ देने आ गयीं। वैसे भी वे सब लोई माता से ईर्ष्या करती थीं।

लोई माता सीधा-सामान लेकर चलने लगीं तब वे माइयाँ कितने ही अपशब्द सुनाती हुईं, पीछे-पीछे चलकर उनके घर तक पहुँच गईं।

संध्या का समय बीत चुका था। रात का अँधेरा छाने लगा था। लोई माता ने सोचा कि : 'ये सब अपने घर वापस तो जायेंगी, परन्तु अँधेरा हो गया है, इसलिए उनको रास्ते में तकलीफ होगी।' उन्होंने अपने बेटे को लालटेन देकर उनके साथ भेज दिया। फिर भी वे माइयाँ कुछ-न-कुछ बड़बड़ाती रहीं, किन्तु लोई माता पर उनका कोई असर नहीं हुआ।

न प्रीयते वन्द्यमानो निन्द्यमानो न कुप्यति।
नैवोद्विजति मरणे जीवने नाभिनन्दति॥

(अष्टावक्रगीता : १८.९९)

ज्ञानी किसीसे वंदित होने पर खुश नहीं होते और निन्दित होने पर चिढ़ते नहीं, मरण से उद्वेग को प्राप्त नहीं होते और जीवन से हर्ष को प्राप्त नहीं होते। ऐसे महापुरुष बाहर से खिन्न और हर्षित होते हुए दिखते हैं फिर भी भीतर से उस ऊँचाई में, अपने स्वभाव में स्थित रहते हैं, जहाँ हर्ष और खिन्नता का प्रवेश ही नहीं है।

लोई माता का बेटा लालटेन लेकर उन लोगों के साथ उनके घर तक गया और फिर वापस आ गया। उसके जाने के बाद उन माइयों का क्रोध कुछ शांत हुआ तो वे सोचने लगीं : 'हमने लोई माता के साथ इतना दुर्व्यवहार किया, उन्हें इतनी गालियाँ दीं, कुछ-का-कुछ सुनाया फिर भी रास्ते में हमें तकलीफ न हो, इसलिए अपने बेटे को लालटेन देकर हमारे साथ भेज दिया! कैसा क्षमावान् स्वभाव है उनका!'

लोई माता के उदार व्यवहार से उन स्त्रियों का चित्त इतना प्रभावित हुआ कि वे सब रात भर उन्हीं के बारे में सोचती रहीं। अब उन्हें अपने किये पर पछतावा होने लगा। दूसरे दिन वे सब लोई माता से माफी माँगने गयीं।

लोई माता ने कहा : ''बहन! इसमें माफी क्या माँगना? आपने जो कुछ कहा होगा, वह मेरे भले के लिए ही कहा होगा। मुझसे भी कुछ गलती हुई होगी। मुझमें कोई दोष आ गया होगा, जिसे दूर करने के लिए मेरे प्रभु ने आपके द्वारा मुझे कुछ अपशब्द सुनाये हैं। इससे आपको तकलीफ हुई है। माफी तो मुझे आपसे माँगनी चाहिए।''

यह सुनते ही उन माइयों की आँखें पश्चात्ताप के आँसुओं से भर गईं। वे लोई माता के चरणों में गिर पड़ीं। उनका स्वभाव ही नहीं, उनका जीवन भी बदल गया। वे भी ईश्वर के मार्ग पर चलने के लिए उत्सुक हो गईं।

एक व्यक्ति के उदार और स्नेहपूर्ण व्यवहार से दूसरों की समझ बदल सकती है, स्वभाव बदल सकता है, जीवन भी बदल सकता है। आदमी को अगर सच्ची समझ है, तो वह शत्रु को भी जीत लेगा। सच्ची समझ होगी तो शत्रु का कैसा भी व्यवहार उसके चित्त में दुःख या द्वेष पैदा नहीं करेगा लेकिन समझ नहीं होगी तो मित्र तो क्या, परम मित्र गुरु भी उसकी गलती बतायेंगे तो वह नहीं सुधरेगा, अपना जीवन सफल बनाने के लिए उत्सुक नहीं होगा। सफल जीवन जीने के लिए सच्ची समझ का होना आवश्यक है। सच्ची समझ से युक्त व्यक्ति ही सच्चा जीवन जी सकता है अन्यथा जीते तो सभी हैं पर कोई विरला ही सच्ची समझ का धनी होता है। जिसको यह धन मिल गया वह बाह्य धन के पाने से हर्षित नहीं होगा और चले जाने से विषादयुक्त नहीं होगा। परिस्थितियों

का विपरीत प्रभाव उसके चित्त पर नहीं पड़ेगा बल्कि सारी परिस्थितियाँ उसके सामने से उसी तरह पसार हो जायेंगी जिस तरह नदी का पानी।

कई लोग कहते हैं : 'मैं डॉक्टर हूँ... मैं वकील हूँ... मैं इंजीनियर हूँ... मेरे बेटे भी पढ़े-लिखे हैं...' आदि आदि।

अब 'मैं कुछ हूँ और ये पढ़े-लिखे हैं... मेरे बेटे हैं...' यह ममत्व है। यह सच्ची समझ नहीं है। जगत की पढ़ाई-लिखाई से सच्ची समझ का कोई सम्बन्ध नहीं है।

लिखी लिखी जग लिखो, पढ़ि-पढ़ि-पढ़ि क्या कीन्ह।
तुलसी हृदय रघुवीर न चीन्हा, तो वृथा जनम कीन्ह॥

ऐसी पढ़ाई-लिखाई में अगर जीवन को पूरा कर दो, तब भी सच्ची समझ नहीं आयेगी। न डॉक्टर बनने से सच्ची समझ आयेगी, न वकील बनने से आयेगी, न संसारी रहने से आयेगी, न मठाधीश बनने से आयेगी। सच्ची समझ आयेगी परमात्मा के ज्ञान से, प्रीतिपूर्वक उस सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप ब्रह्म-परमात्मा का ज्ञान सुनकर उसमें तदाकार रहने से। जाने-अनजाने आपका मन सत्यस्वरूप आत्मा के जितना करीब होता है, उसमें तदाकार रहता है, उतनी आपकी समझ बढ़िया होती है।

ममता नहीं पुत्रादि में, नहीं देह में अभिमान है...

'मैं मोहनभाई... मैं डॉक्टर... मैं प्रोफेसर... मैं कॉन्ट्रैक्टर...' ऐसी जो समझ है, वह कल्पनामात्र है। जब जन्म हुआ तब 'मोहन का जन्म हुआ... गोविन्द का जन्म हुआ...' ऐसा नहीं कहा गया था अपितु ऐसा कहा गया था कि : 'फलाने के घर बेटा हुआ है।' फिर कुछ बड़े हुए तो जो नाम रख दिया गया वही अपने को मानने लगे। जब तक इस कल्पित ज्ञान को पकड़ रखोगे, तब तक सच्ची समझ का विकास नहीं होगा।

मनुष्य मन, बुद्धि, इन्द्रियों तथा शरीर के साथ अपनी एकता मान लेता है। इससे विचार तो मन करता है किन्तु मानता है 'मेरा विचार'। निर्णय करती है बुद्धि किन्तु मानता है 'मेरा निर्णय'। इसी प्रकार मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों के सहयोग से कर्म करता है शरीर किन्तु मानता है 'मैं करता हूँ'। वह अपने को कर्मों का कर्त्ता मान लेता है। आदमी जब कर्त्ता बनकर कर्म करता है, तब बन्धन में फँसता है। अच्छा करेगा तो सोने की जंजीर, बुरे कर्म करेगा तो लोहे की जंजीर। जंजीर चाहे सोने की हो या लोहे की, जंजीर तो जंजीर ही है। जब तक सच्ची समझ नहीं आती है, तब तक बंधन नहीं छूटता है। जब सच्ची समझ मिल जाती है, सच्चा ज्ञान दृढ़ हो जाता है कि : 'प्रारब्ध वेग से शरीर, मन, बुद्धि से कर्म होते रहते हैं... मैं अकर्त्ता-अभोक्ता आत्मा हूँ...' तब उसके पहले के कर्म खत्म होते जाते हैं और नये कर्म बंधनरूप नहीं बनते हैं।

अगर मनुष्य सत्कर्म करता रहे और अपने को कर्त्ता न माने तो वह शीघ्र ही अपने अकर्त्ता पद में प्रतिष्ठित हो सकता है। यह बहुत ऊँची बात है। यह ज्ञान पाने के लिए राजा-महाराजा राज-पाट छोड़कर गुरुओं के आश्रम में रहते थे और सेवा करते थे। कई वर्षों तक गुरुओं की छत्रछाया में रहने के बाद इस ज्ञान को संप्राप्त कर पाते थे।

आप सभी को भी इसी ज्ञान की आवश्यकता है। भले थोड़ा ही समय निकालकर उस वातावरण में ऐसा अभ्यास करके यह ज्ञान आत्मसात् कर लेना चाहिए। इस बात को आप चाहे जानते हों या नहीं जानते हों, मानते हों या नहीं मानते हों, परन्तु है यह बिल्कुल सत्य।

इसके लिए चाहे कहीं भी जाना पड़े, चाहे कहीं भी रहना पड़े, कोई भी त्याग करना पड़े, तो त्याग करके भी अमरत्व को पा लेना चाहिए। कभी-कभी हफ्ते में एक दिन या दो-तीन महीने में एकाध हफ्ता मौन में, एकांत में रहना चाहिए। 'जो सदा अपने साथ है, अपना असली स्वरूप है, जिसके बिना सुखद सत्य और पूर्ण जीवन संभव नहीं है, उस आत्मा का ज्ञान पाकर ही रहूँगा...' इस निश्चय को दृढ़तापूर्वक दोहराते रहो... ज्ञानप्राप्ति के लिए उत्साहपूर्वक कदम आगे बढ़ाते रहो। आप जहाँ हो, आपकी जैसी योग्यता है, वहीं से यात्रा शुरू कर दो। आप एक कदम आगे बढ़ाओगे तो वह सृष्टिकर्त्ता चार कदम आगे आकर आपका हाथ थामने को तैयार खड़ा है।

आगे बढ़ो हे वीरों ! निःसंशय बन निर्द्वन्द्व होकर।
लाख काँटें आयें राह में, कुचल डालो धर्मवीर बनकर॥
शाहंशाह के पुत्र तुम, खुद भी शाहंशाह हो।
क्यों वृथा घबराते हो, बढ़े चलो बढ़े चलो॥

इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलना चाहते हो, तो जीवन में कुछ नियम बना लो कि : 'सुबह जल्दी से इतने बजे उठूँगा... आसन-प्राणायाम आदि नियमित रूप से करूँगा... इतने जप करूँगा... इतने समय पर स्वाध्याय करूँगा... शास्त्र पढूँगा ।' व्यवहार के समय व्यवहार तो करो, पर सावधान रहो कि : 'आज से किसीमें दोष नहीं देखूँगा... कैसी भी परिस्थिति आ जाये, कोई कैसा भी व्यवहार करे, फिर भी फरियाद के विचार नहीं करूँगा... किसीके ऊपर क्रोध नहीं करूँगा... किसी पर क्रोध आ भी गया, तो उससे क्षमा माँग लूँगा... उत्साहपूर्वक सेवा और सत्कर्म करूँगा... कभी संशयात्मक या नकारात्मक चिन्तन नहीं करूँगा...'

कई लोग ऐसे होते हैं कि कार्य शुरू करने से पहले ही संशय करने लगते हैं : 'कार्य पूरा होगा कि नहीं ? सफल होगा कि नहीं ?' इससे उनका उत्साह मन्द पड़ जाता है, उनकी जीवनशक्ति क्षीण हो जाती है । 'यह तो हमसे नहीं होगा...' ऐसे नकारात्मक विचार से भी चित्त दुर्बल होता जाता है। फिर निरुत्साही मन से, अधूरे मन से कार्य करने पर वे अपने कार्य में सफल नहीं होते और उसके लिए दूसरों को दोषी ठहराते हैं। 'यह ऐसा है... वैसा है... उसने ऐसा किया... वैसा किया...' करके फरियाद के विचार करने से पतन होता है और परिणाम दुःख ही होता है।

रास्ते चलते वक्त पैर में कभी कंकड़-पत्थर लग जाय या काँटा चुभ जाय तो 'हाय रे... मेरे पैर में कंकड़ लग गया, काँटा चुभ गया...' ऐसा करके चिल्लाना नहीं चाहिए बल्कि यह सोचना चाहिए कि :

यह संसार काँटों की बाड़ी, उलझ-उलझ मरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भई साधो, सद्गुरु नाम ठिकाना है॥

'यह संसार काँटों और कंकड़-पत्थरों से भरा है। वाह मेरे प्रभु ! पैरों में काँटा चुभाकर भी तू मुझे याद दिलाना चाहता है कि संसार में सुख नहीं है, सार नहीं है । सच्चा सुख तो आत्मा में है, अपने आपमें है। उसकी ओर मुड़ने के लिए ही तू मुझे बाहर के विघ्न और मुसीबतें देता है । वाह प्रभु ! यह भी तेरी करुणा है।' ऐसा करके भगवान को धन्यवाद देना सीखो ।

अड़ोस-पड़ोस में कहीं झगड़ा हो जाए, घर में कुछ अनबन हो जाए तो 'उसने ऐसा कहा... उसने वैसा किया... मेरा तो कोई दोष नहीं है... वह ऐसा ही झगड़ालू है...' ऐसा करके झगड़ा बढ़ाओ मत या दुःखी मत होओ कि : 'मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ?' बल्कि हृदय को धन्यता से भरते जाओ कि : 'वाह प्रभु ! ऐसा करके भी तू मुझे असार संसार से वैराग्य दिलाता है। प्रभु, तू कितना दयालु है !'

जिसका हृदय धैर्य और सही विचार से सराबोर रहता है वह छोटी-मोटी बातों से दुःखी नहीं होता। बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव में भी वह उतना प्रभावित नहीं होता जितने प्रभावित सामान्य लोग होते हैं। जो जरा-जरा बात में दुःखी हो जाता है, फरियाद करता रहता है, उसका पतन होता जाता है और वह अपने सहज आनन्द-स्वभाव से दूर होता जाता है । अतः सावधानीपूर्वक दुःख, फरियाद व दुर्बलता के विचारों को काटते रहो और उत्साह, प्रसन्नता, आनन्द तथा धन्यवाद के विचारों से चित्त को भरते जाओ।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो लड़कियाँ अपने या अपने परिवार के दुःख से दुःखी होती हों और कुछ बोल नहीं पाती हों तथा रो भी नहीं सकती हों, उनका दुःख और गहरे अवचेतन मन में उतर जाता है । आगे चलकर वही दुःख 'हिस्टीरिया' (मानसिक पागलपन) की बीमारी पैदा करता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह बीमारी ज्यादा होती है। जो अपने दुःख को किसीके आगे प्रकट कर देते हैं अथवा रो लेते हैं, उनको हिस्टीरिया जैसी बीमारी का खतरा नहीं होता है।

सबसे अच्छी बात तो यह है कि अपने चित्त को किसी भी परिस्थिति व प्रसंग में दुःखी नहीं होने देना चाहिए। अगर चित्त दुःखी हुए बिना नहीं रहता है तो भगवान को निमित्त बनाकर उनके चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए कि : 'हे प्रभु ! इस दुःखरूप संसार से बचाकर हमें आत्मज्ञान के प्रकाश की ओर ले चल... मोहमाया से छुड़ाकर सत्यस्वरूप आत्मा की ओर ले चल।' इस तरह करुण प्रार्थना करके भगवान या गुरु के आगे अपने दुःख को बाहर निकाल देना चाहिए, उसे पी नहीं जाना चाहिए।

अगर आप चाहते हो कि आपके चित्त पर दुःख का प्रभाव न पड़े तो सावधानीपूर्वक दुःख के साक्षी बनकर उसे देखो या तो विचारों से उसको काट दो : 'सुख भी आया और चला गया । दुःख आया है वह भी चला जायेगा । इन आने-जानेवाली चीजों को देखनेवाला मैं अचल, अविकारी, सुखस्वरूप साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ ।'

सुख सपना दुःख बुलबुला, दोनों हैं मेहमान ।
दोनों बीतन दीजिए, सोऽहं को पहचान ॥

दुःखाकार वृत्ति से दुःख बनता है । वृत्ति बदलने की कला का उपयोग करके दुःखाकार वृत्ति को काट देना चाहिए । आज से ही निश्चय कर लो कि :

'आनन्दस्वरूप आत्मा के विचार करूँगा... आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ता रहूँगा । नकारात्मक या फरियादात्मक विचार करके दुःख को बढ़ाऊँगा नहीं, अपितु सुख-दुःख से परे आत्मा का चिन्तन करूँगा ।'

जैसे आनन्दमयी माँ ने निर्णय कर लिया कि : 'मुझे यह जीवन संसारी विकारों में नहीं गँवाना है, बल्कि परमात्मा का ध्यान करके, परमात्मप्राप्ति करके जीवन को सफल बनाना है ।' ...और वे महान् हो गयीं ।

इन्दिरा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू भी उनके श्रीचरणों में शांति पाते थे । आप भी उतने ही महान् हैं, किन्तु जरूरत है तो केवल इस बात की कि 'अपनी महानता को पहचानकर रहेंगे...' ऐसा ऊँचा उद्देश्य आप बना लो ।

...तो इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए क्या करोगे ?

भोला सदा सत्शास्त्र पढ़, सत्संग में भी जा सदा ।
बाहर कभी मत देख रे, अन्तर्मुखी हो सर्वदा ।
ना ही कहीं है भिन्नता, ना ही कहीं है शून्यता ।
तज भिन्नता तज शून्यता, भज प्रेमपूर्वक पूर्णता ॥

प्रेमपूर्वक उस पूर्ण परमेश्वर का भजन करते जाओ, उसका ज्ञान सुनकर उसमें तल्लीन होते जाओ और सच्ची समझ विकसित करके अपने परमात्मप्राप्ति के उद्देश्य की ओर आगे बढ़ते जाओ...

ॐ आनन्द... ॐ माधुर्य... ॐ शांति...

महा संकल्प और वर्तमान संकल्प

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

'जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्व संकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है ।'

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता : ६.४)

इस श्लोक के द्वारा भगवान स्वयं अपने भगवद्- अनुभव की बात बता रहे हैं । भगवान ही भगवत्तत्त्व की बात बता रहे हैं । 'यह मिले तो सुखी होऊँ... वह छोड़ूँ तो सुखी होऊँ...' आदि झंझटों से जब मनुष्य छूट जाता है तब वह योगारूढ़ कहा जाता है । कुछ करके सुखी होना यह रजोगुण है, कुछ न करके भी सुख की चाह करना यह तमोगुण है लेकिन ईश्वर के संकल्प में अपना संकल्प मिला देने से संकल्प-विकल्प की भीड़ शांत होने लगती है एवं साधक योगारूढ़ होने में समर्थ हो जाता है । कुछ पाने, देखने, भोगने, करने या न करने के संकल्पों की पकड़ छूटते ही उसका मन निःसंकल्प नारायण में शांत होने लगता है ।

संकल्प दो प्रकार के होते हैं :

(१) महा संकल्प (२) वर्त्तमान संकल्प

मनुष्य का महा संकल्प यह होता है कि : 'मैं कभी दुःखी न रहूँ... सदा सुखी रहूँ... ऐसी चीज पा लूँ कि फिर पतन न हो...' मानव मन की गहराई में यह महा संकल्प छुपा रहता है । इस महा संकल्प को साकार करने के लिये ही ध्यान, भजन, सत्संग, पूजन, धर्म, कर्म इत्यादि होते हैं ।

वर्त्तमान (तात्कालिक) संकल्प क्या है ? कमा लिया, खा लिया... इधर गये, उधर गये। यह दो प्रकार का होता है : (१) धर्म के अनुकूल और (२) मन के अनुकूल।

जो धर्मानुकूल तात्कालिक संकल्प के अनुसार जीते हैं, उनको महा संकल्प की पूर्ति में मदद मिलती है। जो धर्म-कर्म का आश्रय नहीं लेते और मन में जैसा आये वैसा ही करते हैं उनका महा संकल्प पूरा नहीं होता। वे महा संकल्प की तरफ चलने की इच्छा तो करते हैं किन्तु पहुँच नहीं पाते।

चलो चलो सब कोउ कहे, विरला पहुँचे कोय।
एक कंचन एक कामिनी, बीचे घाटी दोय॥

कोई थोड़ा ईश्वर के रास्ते चला, सफलता मिली, धन बढ़ा तो और अधिक दुकान-फैक्टरियाँ बढ़ाने में लग जायेगा या विषय-सुख में फँस जायेगा। इन दो घाटियों - कंचन (धन) एवं कामिनी (स्त्री) को पार कर गये तो फिर दूसरी घाटियाँ सामने आयेंगी।

माया तजना सहज है, सहज नारी का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजना एह॥

मान-बड़ाई और ईर्ष्या भी महा संकल्प की पूर्ति में विघ्न डालते हैं। यदि मान-बड़ाई परेशान करें तो यह याद रखें :

अभिमानं सुरापानं गौरवं रौरवस्तथा।
प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

'अभिमान मदिरापान के समान, गौरव रौरव नर्क के समान एवं प्रतिष्ठा सुअर की विष्ठा के समान है। अतः तीनों को त्यागकर सुखी हो जायें।'

यदि आपके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या होती है तो उसके पास जाकर कह दें कि : 'मुझे माफ करो। मुझे आपको देखकर ईर्ष्या होती है। आप भी प्रार्थना करें और मैं भी प्रार्थना करूँ ताकि आपके प्रति मेरी ईर्ष्या मिट जाये।'

अगर मान-बड़ाई, ईर्ष्या- ये छूट गये तो महा संकल्प पूर्ण हो जायेगा। ब्रह्मज्ञानियों का महा संकल्प था तभी तो उन्हें ब्रह्मज्ञान हुआ। भगवान का महा संकल्प है तभी तो वे अपने भगवद्स्वभाव को जानते हैं। ऐसे ही जब अपना भी महा संकल्प पूरा होगा तो फिर सब दुःखों से सदा के लिये निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति हो जायेगी।

अकाल पुरुष का साक्षात्कार करना यह महा संकल्प है। महा संकल्प क्यों कहा ? सब चाहते हैं कि : 'हम सदा सुखी रहें।' यह महा संकल्प तभी पूरा होता है जब महान् परमात्मा का ज्ञान होता है, इसीलिये इसे महा संकल्प कहा। अतः आप भी महा संकल्प पूरा करने के लिये तत्पर हो जायें। उन्हीं तात्कालिक संकल्पों को पूरा करें जो कि धर्म एवं शास्त्र के अनुकूल और मर्यादित हों। मान-बड़ाई, ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ आदि के संकल्पों को कभी भी सहयोग न दें।

ईर्ष्या और संसार के छोटे-मोटे दुःखों से प्रभावित होने के कारण मति मारी जाती है और जब मति मारी जाती है तब तात्कालिक संकल्प और भी तुच्छ होने लगते हैं। महा संकल्प पूरा होने की तो गुंजाइश ही नहीं रहती है अपितु तात्कालिक संकल्प भी तुच्छ होने लगते हैं। अतः सावधानी रखें कि तुच्छ संकल्प, हल्के संकल्प न उठें। अगर उठ भी जायें तो उन्हें तुच्छ समझकर आप सावधान हो जायें।

प्रतिदिन संकल्प करें कि : 'मेरे तात्कालिक संकल्प ऐसे ही बनें कि मेरा महा संकल्प पूरा हो।' ध्यान रखें कि : 'मान-बड़ाई में कहीं हम खप तो नहीं रहे ? ईर्ष्या से हमारे हृदय का परमात्मरस नष्ट तो नहीं हो रहा ? विषय-विकारों में कहीं हम अपना जीवन बरबाद तो नहीं कर रहे ?' इसके लिये अपने ऊपर कड़ी निगरानी रखें, सतत सावधानी रखें, सदैव सजाग रहें।

व्यर्थ के संकल्प न करें। व्यर्थ के संकल्पों से बचने के लिये 'हरि ॐ...' के गुंजन का भी प्रयोग किया जा सकता है। 'हरि ॐ...' के गुंजन में एक विलक्षण विशेषता है कि उससे फालतू संकल्प-विकल्पों की भीड़ कम हो जाती है। ध्यान के समय भी 'हरि ॐ...' का गुंजन करें फिर शांत हो जायें। मन इधर-उधर भागे फिर गुंजन करें। यह व्यर्थ संकल्पों को हटायेगा एवं महा संकल्प की पूर्ति में मददरूप होगा।

तात्कालिक संकल्पों में भी व्यर्थ संकल्पों की बड़ी भीड़ होती है। व्यर्थ स्फुरणाएँ ही संकल्प बन जाती हैं। फिर कुछ तात्कालिक संकल्प धर्म के

अनुकूल होते हैं, कुछ वासना के वेगवाले संकल्प होते हैं । उनमें जरा सावधान रहना पड़ेगा । धर्मानुकूल संकल्पों की पूर्ति महा संकल्प की पूर्ति में सहायक होगी किन्तु वासनायुक्त संकल्पों की पूर्ति में लगे तो महा संकल्प पूर्ण न कर पायेंगे।

अपने दोषों को निकालने का प्रय न आपको स्वयं ही करना पड़ेगा। यदि आप स्वयं निकालने में तत्पर नहीं होंगे तो गुरुदेव भी नहीं निकाल सकेंगे। बच्चा यदि अपनी लापरवाही का दोष खुद न निकाले तो शिक्षक कितना भी बढ़िया हो, उसका विकास कैसे होगा ?

शास्त्रकारों ने कहा है :

मूरख हृदय न चेत, यद्यपि गुरु मिलहिं बिरंचि सम।

ईर्ष्या, मान-बड़ाई आदि से युक्त होकर जिसकी बुद्धि मारी गयी है ऐसे व्यक्ति को यदि ब्रह्माजी भी गुरु के रूप में मिलें तो वह लाभ नहीं ले पायेगा। इसलिये तात्कालिक संकल्प भी शुभ हों, ज्ञानसंयुक्त संकल्प हों, शास्त्रसम्मत संकल्प हों और महा संकल्प की पूर्ति करनेवाले हों इसका ध्यान रखें।

प्रतिदिन संकल्प करें कि : 'कुछ भी हो जाये, आज मैं मान और अपमान को पचा लूँगा... कुछ भी हो जाये, आज मैं विकारों के आवेग में नहीं गिरूँगा... कुछ भी हो जाये, आज मैं ईर्ष्या से संतप्त नहीं होऊँगा... मेरा जो महा संकल्प है उसकी पूर्ति में लगूँगा... मैं गुरु का शिष्य हूँ, भगवान का भक्त हूँ... कुछ भी हो जाये, व्यर्थ संकल्पों में आज का दिन बरबाद नहीं करूँगा।'

एक महा संकल्प हो गया तो बाकी के अवांतर संकल्प भी उसी रूप में होते हैं । जैसे, 'मुझे परमात्मा को पाना है...' यह महा संकल्प हो गया तो बाकी के छोटे-मोटे अवांतर संकल्प उसी के अनुरूप बनेंगे और फालतू संकल्प कम हो जायेंगे। इसलिए प्रतिदिन इस महा संकल्प को पोषण दें कि : 'मुझे तो इसी जन्म में परमात्मा को पाना है, ब्रह्मज्ञान पाना है, ईश्वर का दर्शन करना है, संसारी आकर्षणों से पार होकर समत्वयोग में जागना है...'

महा संकल्प की पूर्ति होने पर अंतःकरण में महान् सुख उत्पन्न होता है और संसार से मजे लेकर सुखी होने की भ्रांति चली जाती है। ऐसे महा संकल्प की पूर्ति करने में जो महापुरुष सफल हो जाते हैं, वे सुख लेने के लिये इधर-उधर भटकते नहीं हैं अपितु उनके अंतःकरण से ज्ञान और सुख का दरिया ऐसा छलकता है कि उनके सम्पर्क में आनेवाले लोग भी सुख-शांति का एहसास करने लगते हैं। वे स्वयं तो तृप्त रहते ही हैं, दूसरों को भी तृप्त करते हैं। वे स्वयं तो तर जाते हैं, दूसरों को भी तारते हैं। **स तरति लोकान् तारयति।**

...और यह महा संकल्प सबके अंतःकरण में दबा हुआ है । जिसके अंतःकरण में पुण्यों के प्रताप से उस महा संकल्प को पूरा करने का उत्साह जागा होता है, दृढ़ता जागी होती है, वही भगवान का भक्त अथवा सद्गुरु का सत्शिष्य योगारूढ़ बन पाता है ।

महा संकल्प माना महान् सुख, जिसे मौत का बाप भी नहीं छीन सकता । निंदक निंदा कर ले, प्रशंसक प्रशंसा कर ले फिर भी जिसका चित्त महा संकल्प के सुख से परिपूर्ण है वह कभी विचलित नहीं होता । वही जीते-जी मुक्तात्मा है, महात्मा है ।

महा संकल्प को जितना ज्यादा महत्त्व देंगे, उतना ही साधारण संकल्प का महत्त्व क्षीण होता जायेगा । मान लो, आपने दृढ़ संकल्प कर लिया कि : 'मुझे आश्रम जाना है...' तो अन्य व्यर्थ संकल्प नहीं फुरेंगे बल्कि अवांतर संकल्प होने लगेंगे कि : 'बस में जाना है... रिक्शा में जाना है... मोपेड पर जाना है...' ऐसे ही महा संकल्प हो जाये कि : 'मुझे ईश्वर को पाना है...' फिर उसके लिये 'जप करना है... ध्यान करना है... संयम से रहना है... सत्संग करना है...' ऐसे अनुकूल अवांतर संकल्प फुरने लगेंगे।

महा संकल्प को महत्त्व देंगे तो अवांतर संकल्प सात्त्विक होंगे, अच्छे होंगे । महा संकल्प का पता नहीं तो मन तात्कालिक संकल्प-विकल्पों में, फिर कुसंकल्पों में चला जायेगा कि : 'इसका बदला लेना है... इसकी खबर लेनी है...' आदि। जिनके जीवन में महा संकल्प नहीं जागा, उनके सारे संकल्प व्यर्थ होते हैं। जिनको महा संकल्प का ज्ञान है वे व्यर्थ संकल्पों से यत्नपूर्वक बच जाते हैं। वे व्यर्थ का नहीं खाते, व्यर्थ का नहीं भोगते, व्यर्थ का नहीं

सोचते क्योंकि उनका एक महा संकल्प है। फिर उसे महा संकल्प कह दें, ईश्वरप्राप्ति कह दें, ज्ञान-प्राप्ति कह दें या योग की पराकाष्ठा कह दें अथवा योगारूढ़ होना कह दें... एक ही बात है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि महा संकल्प केवल मनुष्य ही कर सकता है। गाय, भैंस आदि पशु, पक्षी तो कभी सोच भी नहीं सकते कि : 'हम सदा के लिये सुखी रहें।' हालाँकि सुख तो भैंस भी चाहती है। प्रतिकूलता से वह भी भागती है लेकिन सदा सुखी रहने की मति उसके पास नहीं होती। केवल मनुष्य ही चाहता है कि : 'मैं सदा सुखी रहूँ।'

मान लो, मैं अपने गुरुदेव की तरफ से कह दूँ कि : 'भगवान करें आप एक साल के लिये बहुत सुखी रहें और बाद में आपके पास मुसीबतें आयें!' ...तो आपको अच्छा लगेगा क्या? 'पाँच साल तक आप बहुत सुखी रहें, बाद में आप पर दुःख-मुसीबत आये!' ...तो गहरे मन से आप नहीं चाहेंगे कि पाँच साल के बाद आपके जीवन में ऐसा हो। मैं कह दूँ कि : 'भगवान करें कि जीवन भर आप सुखी रहें किन्तु मरने के बाद आप घोर नरक में जायें!' नहीं, आपको यह भी अच्छा नहीं लगेगा। ...तो यह महा संकल्प है कि आप जीते-जी भी सुख चाहते हैं और मरने के बाद भी सुख चाहते हैं, दुःख नहीं चाहते। आप परम सुख और सदा रहनेवाला सुख चाहते हैं। यही महा संकल्प है।

गर्मी लग रही है और पंखा चला दिया तो तात्कालिक दुःख निवृत्त हुआ। भूख लगी और रोटी खायी तो तात्कालिक भूख निवृत्त हुई लेकिन सदा के लिये तृप्ति नहीं होगी। ऐसे ही तुच्छ तात्कालिक संकल्पों की पूर्ति में समय न गँवाएँ। उन पर नियंत्रण रखें। धर्मानुकूल तात्कालिक संकल्पों की ही पूर्ति करें। तात्कालिक संकल्प अधिक होंगे तो महा संकल्प के लिये जो योग्यता चाहिए, वह नहीं आयेगी।

जप, ध्यान, उपासना, सत्संग आदि से तात्कालिक संकल्पों में तो सामर्थ्य आयेगा ही, महा संकल्प की पूर्ति में भी मदद मिलेगी। 'हम सदा सुखी रहें...' यह महा संकल्प तो समझ लिया लेकिन इस दिशा में यात्रा करने के लिये आप सजग रहना ताकि आपके संकल्प का बल बढ़े। जिनके संकल्प में बल है वे एक महापुरुष अपने संकल्प के बल से हजारों-लाखों व्यक्तियों को अपनी बात समझा सकते हैं, मनवा सकते हैं। जिनके संकल्प में बल नहीं, उनकी बातें श्रद्धा से कौन सुनेगा? उनकी बात कौन मानेगा?

जिन्होंने अपना महा संकल्प पूर्ण कर लिया है फिर बल तो उनका स्वभाव बन जाता है। महा संकल्प की पूर्ति होने पर योगी का योग सिद्ध हो जाता है, भक्त की भक्ति सफल हो जाती है और ज्ञानी को ज्ञान की पराकाष्ठा मिल जाती है।

*

तीन तत्त्वों का मिश्रण : मनुष्य

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

मनुष्य का शरीर इन तीन तत्त्वों का मिश्रण है : पाशवीय तत्त्व, मानवीय तत्त्व और ईश्वरीय तत्त्व।

पाशवीय तत्त्व अर्थात् पशु जैसा आचरण । चाहे जैसा खाना-पीना, माता-पिता की बात को ठुकरा देना, समाज को ठुकरा देना । जैसे, ढोर चलता है ऐसे ही मन के अनुसार चलना । ये पाशवीय तत्त्व हैं ।

मानवीय तत्त्व अर्थात् मानवोचित आचरण । यथायोग्य आहार-विहार, अच्छे संस्कार, अच्छा संग, माता-पिता एवं गुरु का आदर करना- ये मानवीय तत्त्व हैं ।

ईश्वरीय तत्त्व । जब संत-सद्गुरु मिलते हैं एवं मानव साधन-भजन करता है, जप-ध्यान करता है, व्रत-उपवास करता है तब ईश्वरीय तत्त्व विकसित होता है ।

जो मनमुख होता है, उसमें पाशवीय अंश जोरदार होता है । फिर वह चाहे अपना बेटा हो या भाई हो लेकिन पाशवीय अंश ज्यादा है इसीलिये हैरान करता है । जैसे, पशु जरा-जरा बात में लात मारता है, कुत्ता जरा-जरा बात में भौंकता है ऐसे ही पाशवीय अंशवाला मनुष्य जरा-जरा बात में अशांत हो जायेगा, जरा-जरा बात में राग-द्वेष की गाँठ बाँध लेगा । वह अपनी पाशवीय वासनापूर्ति में लगा रहता है । ये वासनाएँ जहाँ पूर्ण होती हं वहाँ राग करने लगेगा और जहाँ वासनापूर्ति में विघ्न आयेगा वहाँ द्वेष करने लगेगा। वासनापूर्ति में कोई अपने से बड़ा व्यक्ति विघ्न डालेगा तो भयभीत होगा, बराबरी का विघ्न डालेगा तो स्पर्धा करेगा और छोटा विघ्न डालेगा तो क्रोधित होगा । इस प्रकार राग-द्वेष, भय-क्रोध, संघर्ष, स्पर्धा आदि में मनुष्य की ईश्वरीय चेतना खर्च होती रहती है ।

इससे कुछ ऊँचे लोग होते हैं, जो अपने कर्त्तव्यपालन में तत्पर होते हैं और मानवीय अंश विकसित किये हुए होते हैं । वे राग-द्वेष को कम महत्त्व देते हैं और अगर हो भी जाता है तो थोड़ा-बहुत सँभल जाते हैं । मानवीय अंश विकसित होने के बावजूद भी यदि किसी में पाशवीय अंश का जोर रहा तो वह पशुयोनि में जाता है । जैसे, राजा नृग । उन्होंने मानवीय अंश तो विकसित कर लिया था फिर भी पाशवीय अंश का जोर था तो गिरगिट बनकर कुएँ में पड़े रहे । यदि किसी में मानवीय अंश का जोर रहा तो मरने के बाद वह पुनः मनुष्य शरीर में आता है और यदि मानवीय अंश के साथ ईश्वरीय अंश के विकास में भी लगा रहा तो वह यहाँ भी सुखी एवं शांतिप्रिय जीवन व्यतीत करेगा और मरने के बाद भी भगवान के धाम में जायेगा। लेकिन जो अपने में पूरा ईश्वरीय अंश विकसित कर लेगा, वह यहीं ईश्वरतुल्य होकर पूजा जायेगा ।

कई ऐसे बुद्धिमान् लोग भी हैं जो ईश्वर को नहीं मानते और उनकी सारी बुद्धि शरीर की सुख-सुविधा इकट्ठी करने में ही खर्च हो जाती है । ऐसे बुद्धिजीवी अपने को श्रेष्ठ एवं दूसरों को तुच्छ मानते हैं जबकि वे स्वयं भी तुच्छता से घिरे हुए ही हैं क्योंकि जो शरीर क्षण-प्रतिक्षण में मौत की तरफ गति कर रहा है उसी को 'मैं' मानते हैं और उससे संबंधित पद-प्रतिष्ठा एवं अधिकारों को 'मेरा' मानते हैं । लेकिन उन भोले मूर्खों को पता नहीं होता कि जैसे बिल्ली चूहे को सँभलने नहीं देती, वैसे ही मृत्यु भी किसीको सँभलने नहीं देती । कब मृत्यु आकर झपेट ले इसका कोई पता नहीं ।

अमेरिका की अखबारें बताती हैं कि अब्राहम

लिंकन का प्रेतशरीर 'व्हाइट हाउस' में दिखता है। अब्राहम लिंकन मानवतावादी तो थे किन्तु यदि साथ ही उनका ईश्वरीय अंश विकसित होता तो मरने के बाद प्रेतयोनि में नहीं जाते बल्कि आध्यात्मिक यात्रा कर लेते।

कुछ लोग मरने के बाद प्रेत होते हैं। मृत्यु के समय पाशवीय वृत्तिवाले मनुष्य सुन्न हो जाते हैं। मृत्यु आती है तो सवा मुहूर्त तक उनका अंतःकरणयुक्त सूक्ष्म शरीर वातावरण में सुन्न-सा, मूर्च्छित-सा हो जाता है। वासना जगी रहती है अतः शरीर में घुसना चाहता है लेकिन नहीं घुस सकता। फिर मरने के बाद वासना के अनुसार उसकी गति होती है। जैसे, अभी प्यास लगी है, भूख लगी है, नींद आती है... इनमें से जिसका जोर ज्यादा होगा, वही काम आप पहले करेंगे। ऐसे ही मरने के बाद जो पाशवीय अथवा मानवीय वासना प्रबल होती है, उसीके अनुसार जीव की गति होती है।

जैसे, किसी भीड़ से छूटने के बाद कोई शराबी है तो शराब के अड्डे पर जायेगा, जुआरी है तो जुए के अड्डे पर जायेगा, सद्गृहस्थ है तो अपनी प्रवृत्ति की ओर जायेगा, साधक है तो अपनी साधना में लगेगा या किसी आश्रम की ओर जायेगा। ऐसे ही मरने के बाद जीव भी अपनी-अपनी वासना एवं कर्मसंस्कार के अनुसार विभिन्न योनियों में गति करते हैं।

मानों, इच्छा है कोई भोग भोगने की और शरीर छूट गया तो फिर अपने कर्मों की तारतम्यता से वह जीव चंद्रमा की किरणों के द्वारा अथवा वृष्टि के द्वारा अन्न-फल इत्यादि में पड़ता है और उसको मनुष्यादि प्राणी खाते हैं। अगर उसका तारतम्य ठीक है तो उसकी वासना के अनुरूप उसे माता का गर्भ मिलता है और यदि ठीक नहीं है तो वह बेचारा पेशाब आदि के द्वारा नाली में बह जाता है। कहाँ तो बड़ा तीसमार-खाँ था और कहाँ दुर्गति को प्राप्त हो गया ! ऐसे कई बार यात्राएँ करते-करते ठीक संयोग बनता है तो उसे गर्भ में टिकने का अवसर मिलता है और वह जन्म लेता है। फिर वह अपनी वासना के अनुसार कर्म करता रहता है और नयी-नयी वासनाएँ बनती रहती हैं। ...तो पशुता और मानवता के संस्कार सबमें हैं। जीव को सत्ता तो ईश्वरीय तत्त्व देता है लेकिन वह ईश्वरीय तत्त्व का अनुसंधान नहीं करता तो कभी पशुयोनि में तो कभी मानवयोनि में जाता है तो कभी सज्जनता का पवित्र व्यवहार करके देवयोनि में जाता है और पुण्य भोगकर पुनः नीच योनि में आ जाता है।

बड़भागी तो वह है जो अपना ईश्वरीय अंश विकसित करने के लिये ईश्वरीय नाम का आश्रय लेता है, ईश्वर की प्राप्ति के लिये साधना करता है और मानवीयता के सुंदर सेवाकार्य करता है। सेवाकार्य भी वाहवाही के लिये नहीं, स्वर्गप्राप्ति के लिये नहीं, वरन् ईश्वरप्रीति के लिये ही करता है। भलाई के कार्य करने से अंतरात्मा विकसित होती है और आत्मबल बढ़ता है। ईश्वरीय अंश हमारी सहायता करता है और हमें सत्प्रेरणा देता है। इस प्रकार जो ईश्वरीय अंश को जगाने में लगता है और सतर्क रहता है वही मनुष्यलोक में बुद्धिमान् है। वह सचमुच में भाग्यशाली है जो अपने हृदय में ईश्वरीय अंश को विकसित करके ईश्वरीय सत्प्रेरणा, ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वरीय ध्यान और ईश्वरीय शांति पाने के लिये सत्कर्म करता है।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

साँईं कँवररामजी

सिंध देश के संत-शिरोमणि साँईं कँवररामजी पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू के समकालीन थे । वे उनके सद्गुरुदेव पूज्यपाद स्वामी श्री केशवानंदजी महाराज की पुण्यतिथि पर उनके आश्रम 'टंडे महमद खान' में कीर्तन-भजन करने आते थे।

जरवारन (सिंध-पाकिस्तान) में ताराचंद नामक एक सज्जन पुरुष की सीधी-सादी सरल स्वभाव की धर्मपत्नी तीर्थबाई संतान न होने के कारण बहुत व्यथित रहती थीं। अनेक इलाज किये, कई मनौतियाँ मानीं तथा मदिरों-तीर्थस्थानों में मत्था टेका फिर भी मनोकामना पूरी नहीं हुई। अंत में थक-हारकर साँईं खोतारामजी की सेवा में बड़े प्रेम और उत्साह से लग गईं। सुबह-शाम उनके यहाँ झाडू-पोंछा करना, साधु-संतों-भक्तों के लिए दूर-दूर से पानी लाना आदि उनकी नित्यप्रति की सेवा थी। सेवा से प्रसन्न होकर साँईं खोतारामजी ने उनकी पुत्रप्राप्ति की मनोकामना जानकर आशीर्वाद दिया :

''माता! तुम्हारे घर एक ऐसा पुत्ररत्न जन्म लेगा जिसका प्रकाश चन्द्रमा की चाँदनी की तरह न सिर्फ सिंध देश को अपितु दुनिया भर को रोशन करेगा। परन्तु माता! मेरी एक शर्त है कि वह मेरा लाल मुझे वापस देना होगा।''

संत बोले सहज स्वभाव, संत का बोल्या वृथा न जाय।

संवत् १९४२ (सन् १८८५ वैशाख) में माता तीर्थबाई के कोख से एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया कँवर जो आगे चलकर साँईं कँवरराम के नाम से प्रख्यात हुए।

आप बाल्यावस्था से ही हर हाल में संतुष्ट रहते। जो चीजें खाने को मिलतीं, उन्हें आपस में मिल-बाँटकर खाते । गाय चराने एवं बाँसुरी बजाने का आपको बड़ा शौक था। आपकी आवाज इतनी मधुर और सुरीली थी कि जो भी एक बार आपका राग सुन लेता, वह आपके पीछे लग जाता।

वे अपनी माँ से बहुत स्नेह करते थे। कभी उनकी भूल पर माँ नाराज हो जातीं और डाँटतीं तो वे उनके चरण पकड़ लेते।

एक दिन पिता की आज्ञा से वे अपने खेत पहुँचे और एक कोने में ध्यानस्थ हो गये । अकस्मात् कहीं से टिड्डियों व पक्षियों के झुंड आ गये और किसानों की तैयार खेती को बरबाद करने लगे। यह देख सभी किसान अपने फसल को बचाने के लिये तरह-तरह के उपाय करने लगे । कोई गोफना (ढेलवाँस) से ढेले फेंक रहा था तो कोई पटाखे व ढोल की आवाज से टिड्डियों को डराने की कोशिश कर रहा था।

आपके पिता श्री ताराचंदजी भी भागकर आये अपने खेत पर। दूर से ही आवाज लगाई : ''कँवर बेटा ! कँवर!'' उधर कँवररामजी को टिड्डियों व पक्षियों का कुछ ख्याल ही नहीं था। वे प्रभु-भजन में तल्लीन थे। खेत में कहीं एक भी पक्षी या टिड्डी नहीं थी। उनकी पूरी फसल सुरक्षित थी जबकि आसपास के खेतों को टिड्डियों ने तबाह कर दिया था।

ताराचंदजी यह देखकर समझ गये कि : 'मेरा बेटा ईश्वर का सच्चा भक्त है।' उस दिन के बाद से वे अपने बेटे को उच्च दृष्टि से देखने लगे और बहुत स्नेह करने लगे।

साँईं कँवररामजी खेती के साथ-साथ दुकानदारी में भी अपने पिताजी का हाथ बँटाते। कभी-कभी आप मिट्टी की हाँड़ी में कुहर (लाल चौली) बेचने जाते। बालक... और दोपहर की तप्त धूप... पैरों में जूते तक नहीं। तब कौन जानता था कि कुहर बेचनेवाला यह गरीब बालक एक ऐसी महान् हस्ती बनेगा जिसका यशोगान युगों तक होता रहेगा ?

आपकी मधुर आवाज सुनकर लोग आपके पास इकट्ठे हो जाते और कुछ ही घंटों में सब कुहर बिक जाते।

एक बार आपने एक साधु को उनकी इच्छा भर कुहर खिलाया जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा :

''बेटा ! ईश्वर तुम्हें सदा खुश रखेगा और शाहों का शाह शाहंशाह बनायेगा।''

अन्न-धन बढ़ा देख माता ने जान लिया कि साधु की कृपा है। कँवर को कहा :

''यह हमारे हक़ का नहीं है। इसे ले जा और गरीबों में बाँट दे।''

धन्य है वह माता जो गरीबी में होते हुए भी पराये धन की एक कौड़ी तक अपने पास नहीं रखना चाहती !

इस घटना के बाद साँईं कँवररामजी को दृढ़ विश्वास हो गया कि ईश्वर के नाम पर जो कुछ दिया जाता है वह व्यर्थ नहीं जाता, बल्कि उसमें बरकत ही आती है। उनके दिल में ईश्वर के प्रति दृढ़ श्रद्धा हो गई।

सद्गुरु से प्रथम मुलाकात

एक बार कँवररामजी की माँ ने कहा : ''बेटा ! कल साँईं सतरामदासजी अपनी कीर्तन-मंडली सहित जरवारन पधार रहे हैं। उनके कीर्तन में बहुत लोग आते हैं। अतः कल रोज से अधिक कुहर बनाकर दूँगी, वहाँ कुहर जल्दी बिक जायेंगे।''

दूसरे दिन बालक कँवर पहुँचे जरवारन। आपकी मधुर आवाज सुनते ही साँईं सतरामदासजी कीर्तन-मंडली से निकलकर बाहर आ गये। देखा तो आठ साल का बच्चा... और प्रभात की नींद त्यागकर कुहर बेचने आया है ! उनका दिल पसीज गया।

इधर कँवररामजी भी उन्हें अपना दिल दे बैठे। आपको रोमांच होने लगा, हृदय गद्गद् हो गया, मानों आपको आत्मिक धन प्राप्त हो गया हो !

साँईं सतरामदासजी ने आपको गले लगा लिया और आपके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा :

''बेटे ! तुम्हारा नाम क्या है ?''

''साँईं ! गुलाम कँवर।'' हाथ जोड़कर कँवररामजी ने उत्तर दिया।

साँईं सतरामदासजी : ''इस हाँड़ी में क्या है ?''

कँवररामजी : ''साँईं ! कुहर।''

''बेटे ! हमको कुहर खिलायेगा।''

''जी साँईं ! मैं आप ही के लिए कुहर लाया हूँ।''

''पूरी हाँड़ी के कितने पैसे लेगा ?''

''साँईं ! मैं आपसे पैसे नहीं लूँगा।''

''बेटे ! तुम बहुत गरीब हो। हम तुम्हारे कुहर मुफ्त में नहीं खा सकते।''

''साँईं ! मैं भी आपका और कुहर भी आपके। फिर पैसे किससे लूँ ?''

''अच्छा बेटे ! तुम पैसे नहीं लेना चाहते हो तो इसके बदले में हम तुम्हें क्या दें ?''

''साँईं ! सिर्फ आपके आशीर्वाद का तलबगार हूँ ताकि मेरे खोटे कर्म कट जायें और आपके श्रीचरणों में मेरी प्रीति बढ़े।''

कँवररामजी के ये वचन सुनकर साँईं सतरामदासजी बड़े प्रसन्न हुए और बरस पड़े। फिर से गले लगा लिया : ''कँवर ! तेरे कुहर आज स्वीकार हो गये।''

एक आठ साल का बालक अपने भावी गुरु को कितना मार्मिक उत्तर देता है ! कितनी ऊँची समझ है ! धन्य हैं आप कँवररामजी और धन्य हैं आपके माता-पिता जिन्होंने आप जैसे लाल को जन्म दिया और धन्य हैं वे सद्गुरु जिनको आप जैसे सत्पात्र शिष्य प्राप्त हुए ! (क्रमशः)

संतवाणी

दुःख कब लगता है ? इसे इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है :

जल से भरे हुए घड़े को समुद्र, नदी अथवा तालाब के जल में ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाओगे तो वह घड़ा भारी नहीं लगेगा, किन्तु उसे जल से बाहर निकाल लोगे तो भारी लगेगा। ऐसे ही जब दुःख लगे तो समझना कि मनरूपी घड़ा चैतन्यरूपी जल से बाहर निकला है। अपने मूलभूत सच्चिदानंदस्वरूप से जब हम अपने को अलग मानते हैं तभी दुःख होता है। अतः जब-जब दुःख हो, तब-तब मनरूपी घड़े को परमात्मरूपी जल के भीतर डुबा दो, फिर दुःख का अभाव हो जायेगा।

साधना में सत्संग की आवश्यकता

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

जप, तप, व्रत, उपवास, ध्यान, भजन, योग आदि साधन अगर सत्संग के बिना किये जायें तो उनमें रस नहीं आता। वे तो साधनमात्र हैं। सत्संग के बिना वे व्यक्तित्व के सिंगार बन जाते हैं।

जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का जीवंत सान्निध्य इन साधनों को सुहावना नहीं बनाता, तब तक ये साधन श्रममात्र रह जाते हैं। ये साधन सब अच्छे हैं फिर भी सत्संग के बिना रसमय नहीं बनते। सत्संग इनमें रस लाता है।

रसो वै सः।

अनुभवनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की वाणी की शरण लिये बिना रसस्वरूप परमात्मा का बोध नहीं हो सकता। अकेले साधन-भजन करने से थोड़ी-बहुत सात्त्विकता आ जाती है, सच्चाई आ जाती है, थोड़ी-बहुत शक्ति आ सकती है किन्तु साथ-ही-साथ सात्त्विकता और सच्चाई एवं शक्ति का अहं भी उतना ही आ जाता है। साधना का अहं खड़ा हो जाता है। अहं के अनुरूप घटना घटती है तो सुख होता है और उसके प्रतिकूल घटना घटती है तो दुःख होता है। सुखी और दुःखी होनेवाले हम मौजूद रहे।

सत्संग से क्या होता है ? हमारा माना हुआ जो परिच्छिन्न व्यक्तित्व है, जीव का अहं है उसकी पोल खुल जाती है। जैसे, प्याज की पर्तें उतारते जाओ तो भीतर से कुछ ठोस प्याज जैसा निकलेगा नहीं क्योंकि उसमें केवल पर्तें-ही-पर्तें हैं। ऐसे ही जब तक सत्संग नहीं मिलता तब तक 'मैं' का ठोसपना दिखता है। सत्संग मिलते ही 'मैं' की पर्तें हटती हैं और अपने परमात्मस्वरूप के सुख-शांति-माधुर्य में जीव प्रवेश पाने लगता है। जीव मुक्ति का अनुभव कर लेता है।

एक साधु ने 'कलिदोषनिवारक' ग्रंथ में पढ़ा कि साढ़े तीन करोड़ नाम जपने से सद्योमुक्ति होती है। उसने अनुष्ठान शुरू किया। साढ़े तीन करोड़ रामनाम का जप कर लिया। कुछ हुआ नहीं। दूसरी बार अनुष्ठान किया। फिर भी सद्योमुक्ति जैसा कुछ हुआ नहीं। जिन सत्पुरुष के द्वारा वह ग्रंथ लिखा गया था उनको जाकर कहा :

''महाराज ! मैंने साढ़े तीन करोड़ जप दो बार किये। कुछ हुआ नहीं।''

''तीसरी बार कर।'' संत ने कहा।

तीसरी बार करने पर भी सद्योमुक्ति का कोई अनुभव नहीं हुआ। उसकी श्रद्धा टूट गई। फिर किसी ब्रह्मवेत्ता के पास गया और अपना हाल बताते हुए कहा :

''स्वामीजी ! सुना था कि साढ़े तीन करोड़ मंत्रजप करने से सद्योमुक्ति होती है। मैंने एक बार नहीं, तीन बार किया। मुझे कोई अनुभव नहीं हुआ।''

''सद्योमुक्ति का मतलब क्या है ?'' संतश्री ने पूछा।

''शीघ्र मुक्ति। **सद्यो मोक्षप्रदायकः**। तुरन्त मुक्ति हो जाती है।''

''वत्स ! तू मनमाना होकर साधन करता था इसलिये अटूट दृष्टि नहीं रही। तू अभी मुक्त है, इसी समय मुक्त है। तुझे बाँध सके ऐसी कोई भी परिस्थिति तीनों लोकों में भी नहीं है। तूने जप तो किया लेकिन सत्संग का रंग नहीं लगा। अब सत्संग में बैठकर देख। दीये में तेल तो भर दिया, बाती भी रख दी लेकिन जल हुए दीये के नजदीक नहीं गया। अब सत्संग में बैठ। शांति से ध्यानपूर्वक सुन। श्रद्धा के साथ विचार कर। तेरी सद्योमुक्ति है ही। 'मेरी सद्योमुक्ति अब होगी...' ऐसा मत मान। अभी, इसी समय, यहीं तेरी सद्योमुक्ति है। हम लोग बड़े-में-बड़ी गलती यह करते हैं कि साधनों के बल से भगवान को पाना चाहते हैं या मुक्त होना चाहते हैं। साधन करनेवाले का व्यक्तित्व बना

रहेगा। केवल भगवान की कृपा से भगवान को पाना चाहते हैं तो आलस्य आ जायेगा। अतः अपने पुरुषार्थ और भगवान की कृपा का समन्वय कर। 'भगवान ऐसे हैं... वैसे हैं... वे जैसे हैं उसी रूप में अपने आप प्रकट हों' ऐसी मान्यता मत रख।''

आपकी धारणा के मुताबिक भगवान प्रकट हों ऐसा चाहोगे तो आपकी धारणा कभी कैसी होगी, कभी कैसी होगी। मुसलमान खुदा को चाहेगा तो अपनी धारणा का, अहीर भगवान को चाहेगा तो अपनी धारणा का, रामानुजाचार्य के भक्त भगवान को चाहेंगे तो अपनी धारणा का, देवी का भक्त अपनी धारणा का चाहेगा, पटेल अपनी धारणा का भगवान चाहेगा, सिंधी अपनी धारणा का झुलेलाल चाहेगा।

आपकी धारणा के भगवान तो आपकी अन्तःकरण की वृत्ति के अनुरूप होकर दिखेंगे। आपकी वृत्ति माता के आकार की होगी तो भगवान माता के स्वरूप में दिखेंगे। आपकी वृत्ति श्रीरामचन्द्र के आकार की होगी तो भगवान रामचन्द्रजी के रूप में दिखेंगे। आपकी वृत्ति झुलेलाल के आकार की होगी तो भगवान झुलेलाल के रूप में दिखेंगे। ऐसे भगवान दिखेंगे और फिर अन्तर्धान हो जायेंगे।

उन महापुरुष ने साधू को कहा : ''तू सत्संग में आ, तब तुझे भगवद्रस की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं होगी।''

यही घटना बल्ख के सम्राट इब्राहीम के साथ घटी। वह राजपाट छोड़कर भारत में आया और फकीर बन गया। लकड़ियाँ बेचकर दो पैसे कमा लेता। एक पैसे से गुजारा करता, एक पैसा बच जाता। जब ज्यादा पैसे इकट्ठे हो जाते तब साधुओं को भोजन करा देता। कहाँ तो बल्ख का सम्राट और कहाँ लकड़हारा होकर परिश्रम करनेवाला फकीर !

इब्राहीम के मन में आया : 'मैं दान का नहीं खाता। इतना बड़ा राज्य छोड़ा, फकीर बनने के बावजूद भी किसीके दान का नहीं खाता हूँ, अपना कमाकर खाता हूँ। ऊपर से दान भी करता हूँ। फिर भी मालिक नहीं मिल रहा है... क्या बात है ?' वह प्रार्थना करने लगता :

''हे मेरे मालिक ! हे मेरे प्रभु ! हे भगवान ! हे खुदा ! हे ईश्वर ! मुझे कब मिलोगे ? मैं नहीं जानता कि आप कैसे हो। आप जैसे भी हो, मुझे सन्मार्ग दिखाओ।''

ऐसी प्रार्थना करते-करते वह ध्यानस्थ होने लगा। अंतर में प्रेरणा मिली कि : ''जा हृषीकेश के आगे। वहाँ अमुक संत हैं, उनके पास जा।''

बल्खनरेश वहाँ पहुँचा और बोला : ''बाबाजी ! मैं बल्ख का सम्राट था। राजपाट छोड़कर फकीर बना हूँ। अभी मेरा अहं नहीं छूटता। मैंने सुना है कि अहं मिटते ही मालिक मिलता है। 'पहले मैं राजा था...' ऐसा अहं था। फिर फकीर का अहं घुसा। अहं निकालने के लिए परिश्रम करके खाता हूँ, संग्रह न करके त्याग करता हूँ, बचा हुआ वित्त भंडारे में खर्च कर देता हूँ। पसीना बहाकर अपना अन्न खाता हूँ फिर भी मालिक क्यों नहीं मिलता ?''

बाबाजी ने कहा : ''यह 'अपना खानेवाला' और 'पराया खानेवाला' ही अड़चन है। मेरा और तेरा, अपना और पराया जो बनाता है वह अहं ही मालिक के दीदार में अड़चन है।''

सम्राट ने कहा : ''महाराज ! मेरा वह अहं आप निकाल दीजिये। इतनी कृपा कीजिये।''

बाबाजी ने कहा : ''हाँ, तू ठीक समझा है। अहं है तेरे पास ?''

''हाँ, अहं है। वही दुष्ट परेशान कर रहा है।''

''तो देख, कल सुबह चार बजे आ जाना। मैं तेरा अहं ले लूँगा।''

''जी, महाराज !''

वे बाबाजी अनुभवसंपन्न ब्रह्मवेत्ता महापुरुष थे। उन्होंने सिद्धि के ऊँचे शिखर सर किये थे।

इब्राहीम जाने लगा। बाबाजी ने पीछे से कहा :

''देख, कल पूरा अहं लाना। कहीं आधा छोड़कर नहीं आना।''

इब्राहीम चकित रह गया ! सोचा : 'अहं छोड़कर कहाँ आऊँगा ? वह तो पूरे का पूरा साथ में रहता है।'

दूसरे दिन सुबह चार बजे इब्राहीम पहुँच गया बाबाजी की गुफा पर। बाबाजी डण्डा लेकर आये। बड़ी-बड़ी आँखें दिखाते हुए बोले :

''अहं लाया है ?''

''हाँ महाराज ! अहं है।''

''कहीं छोड़कर तो नहीं आया ?''

''ना, महाराज !''

''कहाँ है ?''

''हृदय में रहता है।''

''बैठ। निकाल उसको। मुझे दिखा। उसको ठीक कर देता हूँ। जब तक अहं को निकालकर मेरे सामने नहीं रखेगा तब तक उठने नहीं दूँगा। सिर पर डंडा दूँगा। तू सम्राट था तो उधर था। इधर अभी तेरा कोई नहीं। यहाँ बाबाओं के राज्य की सीमा में आ गया है। अहं दिये बिना गया तो... देना है न अहं ? ...तो खोज, कहाँ है अहं ?''

''कैसे खोजूँ अहं को ? वह कहाँ होता है ?''

''अहं कहाँ होता है... ऐसा करके भी खोज। जहाँ होता है वहाँ से निकाल। आज तुझे नहीं छोड़ूँगा।''

ज्यों केले के पात में, पात पात में पात।
त्यों संतन की बात में, बात बात में बात ॥

कभी साधक का ताड़न करने से काम बन जाता है तो कभी पुचकार से काम हो जाता है... कभी किसी साधन से तो कभी किसी साधन से। यह तो महापुरुष जानते हैं कि कौन-से साधक की उन्नति किस प्रकार करनी चाहिए।

युक्ति से मुक्ति होती है, मजदूरी से मुक्ति नहीं होती।

इब्राहीम अहं को खोजते-खोजते अन्तर्मुख होता गया। प्रभात का समय। शुद्ध वातावरण। बाबाजी की कृपा बरसती रही। मन की भाग-दौड़ क्षीण होती गई। एकटक निहारते-निहारते आँखें बन्द हुई। चेहरे पर अनुपम शांति छाने लगी। ललाट पर तेज उभरने लगा। डण्डेवाले बाबाजी तो गुफा के भीतर चले गये थे। डण्डा मारना तो था नहीं। जो कुछ भीतर से करना था वह कर दिया। इब्राहीम की सुरता की गति अन्तर्मुखी बना दी।

इब्राहीम को अहं खोजते-खोजते साढ़े चार बजे... पाँच बजे... छः बज गये। बैठा है ध्यानस्थ। बाहर का कोई पता नहीं। श्वासोच्छ्‌वास की गति मंद होती चली जा रही है।

सूर्योदय हुआ। सूर्य का प्रकाश पहाड़ियों पर फैल रहा है। अपनी आत्मा का प्रकाश इब्राहीम के चेहरे पर दिव्य तेज ले आया है। बाबाजी देखकर प्रसन्न हो रहे हैं कि साधक ठीक जा रहा है।

घण्टों के बाद बाबाजी इब्राहीम के पास गये :

''उठो उठो अब।''

इब्राहीम ने आँखें खोलीं और चरणों में गिर पड़ा।

''अहं दे दो।''

''गुरु महाराज !''

इब्राहीम के हृदय में भाव उमड़ रहा है लेकिन वाणी उठती नहीं। भाव-विभोर होकर गुरु महाराज को निहार रहा है। विचार स्फुरता नहीं। आखिर बाबाजी ने उसकी बहिर्गति कराई। फिर बोले :

''लाओ, कहाँ है अहं ?''

''महाराज ! अहं जैसी कोई चीज है ही नहीं। बस, वही वह है। वाणी वहाँ जाती नहीं। यह तो अध्यारोप करके बोल रहा हूँ।''

बाबाजी ने इब्राहीम को गले लगा लिया।

''इब्राहीम ! तू गैर नहीं। तू इब्राहीम नहीं। तू मैं है... मैं तू हूँ।''

जब तक अहं को नहीं खोजा था तब तक अहं परेशान कर रहा था। अहं को खोजो तो उसका वास्तव में अस्तित्व ही नहीं रहता। आँख कोई चीज देखती है और हम उससे जुड़ जाते हैं : 'मैंने देखा।'

मनःवृत्ति शरीर की तरफ बहती है तो अहं बना देती है और अपने मूल की तरफ जाती है तो मन रहता ही नहीं। जैसे, तरंग उछलती है तो अलग बनी रहती है और पानी को खोजती है तो शांत होकर दरियामय हो जाती है, उसका अलग अस्तित्व मिट जाता है। ऐसे ही 'मैं... मैं... मैं... मैं...' परेशान करता है। वह 'मैं' अगर अपने मूल को खोजता है तो उसका परिच्छिन्न अहं मिलता ही नहीं।

तीन प्रकार का अहं होता है : स्थूल अहं, सूक्ष्म अहं एवं वास्तविक अहं। स्थूल अहं सद्‌गुरु की शरण से विलीन होता है। सूक्ष्म अहं वेदान्त के प्रतिपादित साधन की तरकीब से बाधित होता है। वास्तविक अहं ब्रह्म है, परम सुखस्वरूप है। उसीमें अनन्त-

अनन्त ब्रह्माण्ड फुरफुराकर लीन हो रहे हैं ।

हमारा जो वास्तविक 'मैं' है उसमें अनन्त-अनन्त सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं, स्थित रहती हैं और लीन हो जाती हैं । फिर भी हमारा बाल तक बाँका नहीं होता । हमारा वास्तविक अहं वह है ! अपनी वास्तविकता का बोध नहीं है तो वहाँ की एक तरंग, एक धारा, एक वृत्ति को 'मैं' मानकर उसीमें उलझ रहे हैं । **उलझते-उलझते सदियाँ बीत गईं लेकिन विश्रांति नहीं मिली ।**

बिना सत्संग के साधन-भजन भीतर के व्यक्तित्व को सजाये रखता है । अहं बोलता है : 'पहले मैं संसारी था, अब मैं साधक हूँ। पहले मैं भोगी था, अब मैं त्यागी हूँ । पहले बहुत बोलनेवाला था, अब मौनी हूँ । पहले स्त्री-पुत्र-परिवार के चक्कर में था, अब अकेला शांत हूँ । कमरा बन्द कर देता हूँ। बस, मौज है । न किसीसे लेना न किसीको देना ।'

खतरा पैदा करोगे । जो कमरे में अकेले नहीं बैठते, एकान्त में नहीं रहते उनकी अपेक्षा आप ठीक हो लेकिन जब कमरा न होगा, एकान्त न होगा तब परेशानी चालू हो जायेगी । ...और मौत आपको कमरे से भी तो पकड़कर ले जायेगी ।

जीते-जी मौत के सिर पर पैर रखने की कला आ जाना, इसीका नाम आत्म-साक्षात्कार है । आत्म-साक्षात्कार होने से राग-द्वेष और अभिनिवेश का आत्यंतिक अभाव हो जाता है । किसी भी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति से लगाव नहीं, घृणा नहीं, द्वेष नहीं । अभिनिवेश यानी मृत्यु का भय, जीने की आस्था । आत्म-साक्षात्कार हो जाता है तो जीने की आकांक्षा हट जाती है । जीने की आकांक्षा हटी तो मरने का भय कहाँ ? जिसको अपने आपका बोध हो जाता है वह जान लेता है कि : 'मेरी मौत तो कभी होती नहीं । एक शरीर तो क्या, हजारों शरीर लीन हो जायें, पैदा हो जायें, ब्रह्माण्डों में उथल-पुथल हो जाय फिर भी मुझ चिदाकाशस्वरूप को कोई आँच नहीं आती' ऐसा अपने असली 'मैं' का साक्षात्कार हो जाता है ।

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत ।
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वन्दन अगणीत ॥

असली श्रीकृष्ण कौन ?

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

भगवान श्रीकृष्ण की सभा में एक बार खूब हास्य-विनोद हो रहा था । इतने में काशीराज के मित्र राजा पौण्ड्रक का एक दूत आया एवं बोला :

''हमारे राजा साहब ने आपके लिए कहलवाया है कि तुम ये वंशी, मुकुट, पीताम्बर आदि चिह्न छोड़ दो, असली कृष्ण तो मैं हूँ। अगर तुमने जल्दी से यह वेश-भूषा नहीं छोड़ी और मेरी शरण में नहीं आये तो मैं तुम्हें मिट्टी में मिला दूँगा । असली कृष्ण भगवान मैं ही हूँ । मेरा ही अवतार हुआ है । तुमने अपनेको कृष्ण घोषित कर मेरे नाम पर बट्टा लगाया है ।''

उस मूर्ख पौण्ड्रक ने दो नकली हाथ बनवा लिये थे । सुदर्शन चक्र, गदा, शंख आदि भी बनवा लिये थे और कभी बंसी भी बजा लेता था । उसके चमचे उसको बहकाया करते थे कि : 'आप अवतार हो ।' यह सुनकर वह फूला न समाता एवं आखिर उसने श्रीकृष्ण को चुनौती दे दी ।

पौण्ड्रक के दूत से यह संदेश सुनकर श्रीकृष्ण समेत सारी सभा खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''जाकर अपने राजा साहब से कह दो कि अस्त्र-शस्त्र तो छोड़ूँगा लेकिन तुझ पर ही छोड़ूँगा । वेश-भूषा तो उतारूँगा लेकिन अपनी नहीं, वरन् तेरी ही वेश-भूषा उतरवाऊँगा । युद्ध तो करूँगा लेकिन तुझसे मारा नहीं जाऊँगा वरन् तुझको ही मिट्टी में मिला दूँगा । तू तैयार हो जा । श्रीकृष्ण सेना लेकर आ रहे हैं ।''

पौण्ड्रक ने श्रीकृष्ण का संदेश सुना तो वह दो अक्षौहिणी सेना लेकर तैयार हो गया । काशी का राजा

पौण्ड्रक का मित्र था। मदद के लिए तीन अक्षौहिणी सेना वह भी ले आया। दोनों पक्षों के बीच भीषण युद्ध हुआ। त्रिशूल, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाण आदि अस्त्र-शस्त्र खूब बरसे। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गदा, तलवार, चक्र, बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों से पौण्ड्रक की सेना को तहस-नहस कर डाला एवं पौण्ड्रक की पोल खोलकर रख दी। श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक को मार गिराया एवं उसके मित्र काशीराज का सिर उतारकर उसे भी काशीपुरी के प्रांगण में भेज दिया। अपने पिता का सिर देखकर काशीनरेश के पुत्र सुदक्षिण ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि : 'मेरे पिता को मारनेवाले श्रीकृष्ण से मैं बदला लूँगा।' उसने तांत्रिक विधि से माहेश्वरी कृत्या को उत्पन्न करके उसे द्वारिका भेजा। कृत्या को आग उगलते देखकर द्वारिकावासी घबरा गये एवं श्रीकृष्ण के पास आये। उस समय भगवान सभा में चौसर खेल रहे थे। लोगों ने कहा :

''कृष्ण ! यह कृत्या मानों, हम सबको निगलने आ रही है। अब केवल आप ही हमें बचा सकते हैं।''

श्रीकृष्ण मंद-मंद मुस्कराये एवं बोले : ''डरो मत। मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा।''

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी एवं उसने कृत्या को कुचल डाला। उस कृत्यारूप आग का मुँह टूट-फूट गया, तेज नष्ट हो गया, शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँ से लौटकर काशी आ गयी। वहाँ उसने आचार्यों के साथ सुदक्षिण को जलाकर भस्म कर दिया। कृत्या के पीछे सुदर्शन चक्र भी काशी पहुँचा एवं संपूर्ण काशी को जलाकर पुनः श्रीकृष्ण के पास लौट आया। इस प्रकार सुदक्षिण का तंत्रप्रयोग उसीके लिए विनाश का कारण बन गया।

यह कथा श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के ६६वें अध्याय में आती है। कोई चाहे कैसा भी यत्न क्यों न करे, नकल नकल ही होती है एवं सत्य सदैव सत्य। सच्चाई को कोई छुपा नहीं सकता एवं नकल का पर्दाफाश हुए बिना रह नहीं सकता। श्रीकृष्ण के दिव्य जीवन का यह प्रसंग हमें यही संदेश देता है कि :

सच्चाई छुप नहीं सकती, बनावट के उसूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥

*

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

शुभ कर्म व्यर्थ नहीं जाते

यह कर्मभूमि है। यहाँ किसीका भी कर्म व्यर्थ नहीं जाता है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

(श्रीरामचरित० अयोध्या काण्ड : २१८.२)

धर्मदत्त नामक एक पवित्र और सदाचारी ब्राह्मण था। व्रत-उपवासादि करता था। श्वासोच्छ्वास में रामनामरूपी यज्ञ करनेवाला वह ब्राह्मण एक बार निर्जला एकादशी करके दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी के दिन प्रभातकाल में देवपूजन हेतु पूजा की थाली लिये मंदिर की ओर जा रहा था। सामने मार्ग में विकरालरूप धारण करके एक राक्षसी आयी। उसे देखकर वह घबरा गया और हड़बड़ी में ही उसने पूजा की थाली जोर से राक्षसी पर दे मारी।

कथा कहती है कि पूजा की थाली में रखे हुए तुलसी-पत्र का स्पर्श होते ही उस राक्षसी की पूर्व-स्मृति जाग उठी और वह काँपती हुई दूर जा खड़ी हुई। फिर बोली :

''हे ब्राह्मण ! आपकी इस पूजा की थाली का स्पर्श होते ही मेरा कुछ उद्धार हुआ है और मुझे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो रहा है। अब आप जैसे भगवत्प्रेमी भक्त मुझ पर कृपा करें, तो मेरा उद्धार हो।

हे भूदेव ! मैं पूर्वजन्म में कलहा नामक ब्राह्मणी थी और अपने पति के साथ खूब कलह करती थी। मेरा जैसा नाम था वैसे ही मेरे कर्म थे। यह देखकर

मेरे पति बहुत परेशान हो गये और अपने किसी मित्र के साथ उन्होंने विचार-विमर्श किया कि : 'अपनी पत्नी से जो भी कहता हूँ, वह उसका उल्टा ही करती है।' तब मित्र ने निषेधयुक्ति से काम लेने की पद्धति मेरे पति को बतलायी।

मेरे पति घर आये और बोले :

'कलहा ! मेरा जो मित्र है न, वह बहुत खराब है। अतः उसको भोजन के लिए नहीं बुलाना है।'

तब मैंने कहा :

'नहीं, वह तो बहुत सज्जन है इसलिए उसे आज ही भोजन के लिए बुलाना है।'

फिर मैंने उसे भोजन करवाया।

कुछ दिन बीतने पर मेरे पति ने पुनः निषेधयुक्ति अपनाते हुए कहा : 'कल मेरे पिता का श्राद्ध है किन्तु हमें श्राद्ध नहीं करना है।'

मैंने कहा : 'धिक्कार है तुम्हारे ब्राह्मणत्व पर ! श्राद्ध है और हम श्राद्ध न करें तो फिर यह जीवन किस काम का ?'

तब पति बोले : 'अच्छा ...ठीक है। एक ब्राह्मण को बुलाना, किन्तु वह अनपढ़ हो।'

मैंने फिर कहा : 'धिक्कार है, तुम ऐसे ब्राह्मण को पसंद करते हो ! जो संयमी हों, विद्वान् हों ऐसे अठारह ब्राह्मणों को बुलाना।'

पति : 'अच्छा ...ठीक है, किन्तु पकवान मत बनाना। केवल दाल-रोटी बनाना।'

मैंने तो खूब पकवान बनाये। वे जो-जो निषेधयुक्ति से कहते, उसका उल्टा ही मैं करती। मेरे पति भीतर से प्रसन्न थे किन्तु बाहर से निषेधयुक्ति से काम ले रहे थे। किन्तु बाद में वे भूल गये और बोले :

'यह जो पिण्ड है इसे किसी अच्छे तीर्थ में डाल आना।' मैंने वह पिण्ड नाली में डाल दिया। यह देखकर उन्हें दुःख हुआ किन्तु वे सावधान हुए और बोले :

'हे प्रिये ! अब उस पिण्ड को नाली से निकालकर नदी में मत डालना, भले ही वह वहीं पड़ा रहे।'

मैं तो उस पिण्ड को तुरन्त नाली से निकालकर नदी में डाल आयी।

इस प्रकार वे जो भी कहते, मैं उसका उल्टा ही करती। वे सावधानीपूर्वक काम लेते रहते तो भी मेरा स्वभाव कलहप्रिय होने के कारण मैं कभी-कभी उनसे कलह कर लेती। मुझे संतति न होने के कारण एवं मेरा कलह का स्वभाव होने के कारण मेरे पति खूब दुःखी हुए एवं संतानप्राप्ति हेतु उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया।

तब मैंने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली और वह भी इसलिए कि मेरे पति की बहुत बदनामी हो और लोग उन्हें परेशान करें।

आत्महत्या के कारण ही मुझे यह प्रेतयोनि मिली है। मैं किसीके शरीर में प्रविष्ट हुई थी किन्तु वह 'हरे कृष्ण-हरे राम...' का जप करता था इसलिए विष्णु के दूतों ने मुझे वहाँ से मार भगाया। अब मैं किसी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट होने के लिए ही आ रही थी कि सामने आप मिल गये। मैं आपको डराकर आपका मनोबल गिराना चाहती थी ताकि आपके श्वास द्वारा आपके शरीर में प्रविष्ट हो सकूँ, किन्तु आपके पवित्र परमाणुओं से युक्त पूजा की थाली एवं तुलसी का स्पर्श होने से मेरा कुछ उद्धार हुआ है। मेरे कुछ पाप नष्ट हुए हैं किन्तु अभी मेरी सद्गति नहीं हुई है। अतः आप कुछ कृपा करें।''

तब उस धर्मदत्त ब्राह्मण ने संकल्प करके कार्तिक, एकादशी आदि व्रत का आधा पुण्य उस प्रेतयोनि को पायी हुई कलहा को अर्पित किया। इतने में ही वहाँ भगवान के सुशील एवं पुण्यशील नाम के दो दूत विमान लेकर आये और प्रेतयोनि से मुक्त उस कलहा को उसमें बैठाया। फिर वे धर्मदत्त से बोले :

''हे ब्राह्मण ! जो परहित में रत रहते हैं उनके पुण्य दुगुने हो जाते हैं। अपनी दोनों पत्नियों के साथ तुम लंबे समय तक सुखपूर्वक रहते हुए बाद में विष्णुलोक को प्राप्त करोगे। यह कलहा भी तुम्हें वहीं मिलेगी। वहाँ भी वर्षों तक रहकर फिर तुम लोग मनु-शतरूपा के रूप में अवतरित होकर तप करोगे और भगवान को पुत्ररूप में अपने घर आमंत्रित करोगे।

वरदान के फलस्वरूप तुम राजा दशरथ के रूप में जन्म लोगे और यह आधे पुण्यों की

फलभागिनी कलहा तुम्हारी कैकेयी नामक रानी होगी। साथ ही स्वयं भगवान साकार रूप लेकर श्रीराम के रूप में तुम्हारे घर अवतरित होंगे।''

यह कहते हुए दोनों पार्षद कलहा को लेकर चल दिये। कालांतर में वही बात अक्षरशः चरितार्थ हुई जब दशरथ-कौशल्या के घर निर्गुण-निराकार ने सगुण-साकार रूप धरकर पृथ्वी को पावन किया।

कितनी महत्ता है हरिनाम, हरिध्यान की ! श्वास-श्वास में प्रभु नाम के रटन ने उस धर्मदत्त ब्राह्मण को दशरथ-कौशल्या के रूप में भगवान के माता-पिता होने का गौरव प्रदान कर दिया ! सच ही है कि शुभ कर्म व्यर्थ नहीं जाते।

*

द्रौपदी का अक्षयपात्र

ईर्ष्या-द्वेष और अति धन-संग्रह से मनुष्य अशांत होता है। ईर्ष्या-द्वेष की जगह पर क्षमा और सत्प्रवृत्ति का हिस्सा बढ़ा दिया जाये तो कितना अच्छा !

दुर्योधन ईर्ष्यालु था, द्वेषी था। उसने तीन महीने तक दुर्वासा ऋषि की भली प्रकार से सेवा की, उनके शिष्यों की भी सेवा की। दुर्योधन की सेवा से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हो गये और बोले :

''माँग ले वत्स ! जो माँगना चाहे माँग ले।''

जो ईर्ष्या और द्वेष के शिकंजे में आ जाता है, उसका विवेक उसे साथ नहीं देता है लेकिन जो ईर्ष्या-द्वेष से रहित होता है उसका विवेक सजग रहता है। वह शांत होकर विचार या निर्णय करता है। ऐसा व्यक्ति सफल होता है और सफलता के अहं में ग़रक़ाव नहीं होता। कभी असफल भी हो गया तो विफलता के विषाद में नहीं डूबता। दुष्ट दुर्योधन ने ईर्ष्या एवं द्वेष के वशीभूत होकर कहा :

''मेरे भाई पाण्डव वन में दर-दर भटक रहे हैं। उनकी इच्छा है कि आप अपने हजार शिष्यों के साथ उनके अतिथि हो जायें। अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे भाइयों की इच्छा पूरी करें लेकिन आप उसी वक्त उनके पास पहुँचियेगा जब द्रौपदी भोजन कर चुकी हो।''

दुर्योधन जानता था कि : 'भगवान सूर्य ने उन्हें अक्षयपात्र दिया है। उसमें से तब तक भोजन-सामग्री मिलती रहती है जब तक द्रौपदी भोजन न कर ले। द्रौपदी भोजन करके पात्र को धोकर रख दे फिर उस दिन उसमें से भोजन नहीं निकलेगा। अतः दोपहर के बाद जब दुर्वासाजी उनके पास पहुँचेंगे तब भोजन न मिलने से कुपित हो जायेंगे और पाण्डवों को शाप दे देंगे। इससे पाण्डव वंश का सर्वनाश हो जायेगा।'

इस ईर्ष्या और द्वेष से प्रेरित होकर दुर्योधन ने दुर्वासाजी की प्रसन्नता का लाभ उठाना चाहा।

दुर्वासा ऋषि मध्याह्न के समय जा पहुँचे पाण्डवों के पास। युधिष्ठिर आदि पाण्डव एवं द्रौपदी दुर्वासाजी को शिष्यों समेत अतिथि के रूप में आये हुए देखकर चिन्तित हो गये। फिर भी बोले : ''विराजिये महर्षि ! आपके भोजन की व्यवस्था करते हैं।''

अंतर्यामी परमात्मा सबका सहायक है, सच्चे का मददगार है। दुर्वासाजी बोले : ''ठहरो ठहरो... भोजन बाद में करेंगे। अभी तो यात्रा की थकान मिटाने के लिए स्नान करने जा रहा हूँ।''

इधर द्रौपदी चिन्तित हो उठी कि अब अक्षयपात्र से कुछ न मिल सकेगा और इन साधुओं को भूखा कैसे भेजें ? उनमें भी दुर्वासा ऋषि को ! वह पुकार उठी : ''हे केशव ! हे माधव ! हे भक्तवत्सल ! अब मैं तुम्हारी शरण में हूँ...'' शांत हृदय एवं पवित्र चित्त से द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण का चिंतन किया। भगवान श्रीकृष्ण आये और बोले :

''द्रौपदी ! कुछ खाने को तो दो !''

द्रौपदी : ''केशव ! मैंने तो पात्र को धोकर रख दिया है।''

श्रीकृष्ण : ''नहीं नहीं... लाओ तो सही ! उसमें जरूर कुछ होगा।''

द्रौपदी ने लाकर दिया पात्र तो दैवयोग से उसमें तांदुल की भाजी का एक पत्ता बच गया था। विश्वात्मा श्रीकृष्ण ने संकल्प करके उस तांदुल की भाजी का पत्ता खाया और तृप्ति का अनुभव किया तो उन महात्माओं को भी तृप्ति का अनुभव हुआ। वे कहने लगे कि : ''अब तो हम तृप्त हो चुके हैं, वहाँ जाकर क्या खायेंगे ? युधिष्ठिर को क्या मुँह दिखायेंगे ?''

शांतचित्त से की हुई प्रार्थना अवश्य फलती है। ईर्ष्यालु एवं द्वेषी चित्त से तो किया-कराया भी चौपट हो जाता है जबकि नम्र और शांत चित्त से तो चौपट हुई बाजी भी जीत में बदल जाती है और हृदय धन्यता से भर जाता है।

*

जाको राखे साँइयाँ...

ऋषि शमीक अपने शिष्यों के साथ कुरुक्षेत्र में महाभारत के संग्राम के बाद का दृश्य देखने को निकले। वहाँ लाशों के ढेर पड़े हुए थे।

उन्हीं ढेरों के बीच एक जगह गजराज के घण्ट के नीचे किसी पक्षी के दो बच्चे बैठे थे। उन्हें देखकर शिष्य बोल उठे :

''गुरुवर! बड़े-बड़े योद्धा नष्ट हो गये, उनकी लाशों से बदबू आ रही है किन्तु ऐसे घोर संग्राम के बाद भी ये पक्षी के बच्चे जीवित हैं!''

ऋषि शमीक ने ध्यान करके देखा, फिर कहा :

''हाँ, पक्षी के अण्डे जमीन पर पड़े थे और गजराज का घंट ऊपर से आ गिरा। बचानेवाले अंतर्यामी परमेश्वर की इच्छा से ही ऐसा हुआ है। उन्हीं अण्डों से ये बच्चे निकले हैं। इन्हें आश्रम ले चलो और दाना-पानी दो।''

शिष्य : ''गुरुवर! जिन परमात्मा ने इनको ऐसे घोर युद्ध में भी बचाकर रखा है, वही आगे भी इनकी रक्षा करेगा तो क्यों इन्हें ले चलें?''

ऋषि शमीक : ''भगवान का काम पूरा हुआ। भगवान ने ही हमें यहाँ भेजा है ताकि इनकी आगे की परवरिश हो सके।''

पक्षी के बच्चे वहाँ से उठा लिये गये एवं आश्रम में उनके दाना-पानी की समुचित व्यवस्था भी हो गयी।

सच ही है :

जाको राखे साँइयाँ, मार सके ना कोय।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ९९वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जनवरी २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

सच्चा समाजवाद

[महात्मा गाँधीजी पुण्यतिथि : ३० जनवरी २००१]

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

एक बार कुछ समाजवादी नवयुवक अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए महात्मा गाँधी के पास आये। गाँधीजी उनकी शंकाओं का संतोषपूर्वक समाधान करते जा रहे थे। फिर उन्होंने लिखकर उन नवयुवकों से पूछा :

''मैंने तो समाजवाद का तात्पर्य यह लगाया है कि हम मेहनत के कामों के प्रति अरुचि हटा दें एवं आलस्य का त्याग कर दें। बोलो, तुम लोग अपने प्रत्येक काम अपने हाथों से ही करते हो कि दूसरों के द्वारा करवाते हो? अपने घर नौकर रखते हो कि नहीं?''

उन नवयुवकों के अगुवा ने कहा : ''बापू! विद्याभ्यास, समाजसेवा एवं ऐसी प्रवृत्तियों में अपने हाथों से अपना काम करने का वक्त ही कहाँ मिलता है? हम सबके यहाँ कम-से-कम एक नौकर तो है ही। किसी-किसीके यहाँ तो दो-तीन नौकर भी होंगे।''

गाँधीजी : ''जब तुम लोग अपनी ही सेवा स्वयं नहीं कर सकते तो लोगों की सेवा कैसे करते होगे? क्या तुम लोग दंभ का आचरण नहीं कर रहे? बातें करते हो समाजवाद की और अपना काम दूसरों से करवाते हो? यह विचित्र समाजवाद तो मेरी समझ में नहीं आता।''

नवयुवकों के अगुवा ने संकोच के साथ कहा :

''बापू! अब आप ही हमें सच्चे समाजवाद की आचार-संहिता बतायें। हम उस पर अवश्य

अमल करेंगे।''

उस दिन महात्मा गाँधी का मौन दिवस (सोमवार) था। उन्होंने उन नवयुवकों को लिखकर जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार था :

''सच्चे समाजवाद पर अमल करना हो तो अपने प्रत्येक कार्य में अपने ही हाथ-पैरों का उपयोग करो। भगवान ने मनुष्य का निर्माण सच्चे समाजवादी के रूप में ही किया है किन्तु हम स्वयं ही प्रमादी, आलसी होकर पूँजीवादी मानसिकता से ग्रस्त हो जाते हैं। इसीलिये पराये लोगों की मेहनत पर 'ताक धिनाधिन' करने का दोष हमारे स्वभाव में आ जाता है।

भगवान ने हमें हाथ एवं दिमाग कार्य करने के लिए ही दिये हैं। पूरे दिन में हाथों से छः घण्टे काम लेना चाहिए, पैरों से भी छः घण्टे काम लेना चाहिए एवं दिमाग से भी छः घण्टे काम लेना चाहिए। ये तीनों अंग कार्यरत रहेंगे तभी तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा बना रहेगा। पैरों को काम दो ताकि मेद (मोटापा) न बढ़े। हाथों को काम दो ताकि शरीर स्वस्थ रहे एवं पेट की बीमारी न हो। दिमाग को काम दो ताकि बुद्धि विकसित हो। दीर्घ जीवन का रहस्य इन तीन अंगों के सदुपयोग में ही समाहित है। यही सच्चे समाजवाद की आचार-संहिता है।

अब तुम्हें क्रमशः बताता हूँ। सुबह की दिनचर्या से समाजवाद की शुरूआत करो। सुबह उठो तब अपना बिस्तर स्वयं उठाकर यथायोग्य स्थान पर ठीक से रख दो। अपने कपड़े स्वयं ही धो डालो। बर्तन माँजने-धोने में भी मदद करो। अपने कपडों के लिये सूत भी स्वयं कातो एवं स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करो।

तुम्हारे आचरण में जब यह सब पूर्ण रूप से उतर जायेगा, तब तुम्हें समाजवाद का प्रचार करने की जरूरत नहीं रहेगी। तुम्हारा आचरण स्वयं ही समाजवाद की प्रत्यक्ष प्रतीति करवायेगा। तुम्हारा परिवार भी तुम्हें आदरपूर्वक देखने लगेगा कि उसके लिये बोझरूप बनने की जगह तुम मददरूप बने हो, एक आदर्श नागरिक बने हो।''

गाँधीजी की यह वाणी उन नवयुवकों के हृदयों को स्पर्श कर गयी। सबने उनके चरणों की वंदना की एवं विदा ली।

गाँधीजी केवल कहते ही थे ऐसी बात नहीं, जो कहते थे पहले उसका आचरण स्वयं करते थे। उनकी कथनी एवं करनी की साम्यता दूसरों को आकर्षित किये बिना नहीं रहती थी। काश ! यदि आज के नवयुवक इसका महत्त्व समझ सकें तो वे कई परेशानियों से बच जायें और स्वयं तो स्वावलंबी बनें ही, समाज एवं राष्ट्र के लिये भी एक आदर्श नागरिक बन सकते हैं।

आज सरकारी दफ्तरों में कामचोर, रिश्वतखोर लोगों का झमेला बढ़ गया है। ईमानदार व मेहनती कर्मचारी को भी हरामखोरीवाले मजबूर कर देते हैं अपने जैसा बनने को। देश व समाज पर बोझ हैं ऐसे लोग। भविष्य में दुःखद योनियों में पड़ते हैं। वर्त्तमान में आत्म-संतोष, आत्म-शांति व कर्त्तव्यपालन के आनंद से वंचित रहते हैं। अतः कामचोर व रिश्वतखोर न बनें।

सत्य साँई बाबा पर आरोपों की आँधी...

अखबारों में, पत्रिकाओं में, वेब साइटों पर सत्य साँई बाबा पर कई आरोप लगाये गये हैं । उन लोगों के मन का वमन यहाँ वर्णन करना उचित नहीं ।

विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है कि सनातन धर्मावलंबियों ने कभी किसी अन्य धर्म का अथवा उनके धर्माचार्यों, पीरों-फकीरों का विरोध नहीं किया । उनके विरोध में कभी हथियार नहीं उठाये वरन् उनके पूजागृहों (चर्च, मस्जिद आदि) के निर्माण के लिए उन्हें जमीनें दीं, आर्थिक सहयोग दिया । कारण, उन्होंने सत्य को सभी देवालयों एवं पूजागृहों में समान रूप से देखा है । उनकी दृष्टि में 'ईश्वर', 'अल्लाह' और 'गॉड' एक ही सत्य के विभिन्न नाम हैं । सत्य के इन नामों को लेकर झगड़ने की आदत हिन्दू धर्मावलंबियों में नहीं है ।

सनातन हिन्दू धर्म बहुत उदार और सहिष्णु है । इसका कल्याणकारी संदेश पूरे विश्वमानव समुदाय के लिए है । इसमें किसी मत, पंथ, मजहब अथवा उनके अनुयायियों के विरुद्ध अपशब्द नहीं कहे गये हैं और न ही उन्हें हानि पहुँचाने के कोई संकेत ही दिये गये हैं, जैसा कि विश्व के कुछ तथाकथित धर्मों में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है । सनातन हिन्दू धर्म की उदारता और सहिष्णुता आज भी सामाजिक व्यवहारों में दिखलाई पड़ती है तो इसका एकमात्र कारण यही है कि इन आदर्शों को हिन्दू साधु-संतों ने दिन-रात अथक प्रयास करके समाज में प्रचारित-प्रसारित किया है । लाखों लोग हिन्दू संतों की अनुभवयुक्त वाणी से अपना व्यावहारिक, आध्यात्मिक जीवन उन्नत करके सुख-शांति पा रहे हैं किन्तु कुछ दुष्ट एवं स्वार्थी प्रकृति के लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए ऐसे सनातन धर्म के संतों को नीचा दिखाने एवं जनता को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए षड्यंत्रों का जाल फैला रहे हैं ।

धर्मान्तरण करानेवालों के बाप भी ऐसी शांति, समझ एवं शीतलता नहीं दे सकते, जैसी भारत के संत एवं उनके सत्संग दे रहे हैं । इसके अतिरिक्त जो सामाजिक सेवाकार्य सरकार को करना चाहिए, वही कार्य संतों द्वारा हो रहे हैं । ऐसे संतों के ऊपर कीचड़ उछालनेवाले लोग ईर्ष्या-द्वेष और अन्धे स्वार्थ से प्रेरित होते हैं । ऐसे लोगों ने ही स्वामी विवेकानंद को काफी बदनाम किया और स्वामी रामतीर्थ जैसे फक्कड़ ब्रह्मवेत्ता को भी गलत तरीके से बदनाम किया था तो अभी साँईं बाबा के लिए भी...

ऐ भारतवासियों ! अब तो जागो ! कब तक सोते रहोगे ? भारतीय संस्कृति के संतों को अपमानित करने के षड्यंत्रों के शिकार कब तक होते रहोगे ? जिन आरोपों को सिद्ध नहीं किया जा सका है उन्हीं को जनता के समक्ष प्रस्तुत करनेवाली पत्रिकाएँ व समाचारपत्र पैसों पर बिके व द्वेष से भरे हैं । ऐसी पत्रिकाओं को आधार मानकर कब तक उलझते रहोगे ? आरोप करनेवाले भी कौन ? वही जो विदेशी हैं ।

जिन आरोपों को सिद्ध नहीं किया गया है उन्हीं को जनता के समक्ष प्रस्तुत करना, यह बदनाम करने की साजिश नहीं तो और क्या है ? **'फूट डालो और राज करो'** की नीति नहीं तो और क्या है ? अपने धर्म का प्रचार करने के लिए कैसे-कैसे अमानवीय हथकंडे अपनाते हैं लोग । कहीं सुविधाओं का प्रलोभन देकर तो कहीं भयभीत करके जबरन धर्मपरिवर्तन कराना क्या यही धर्म-प्रचार का तरीका है ? भारत में कुछ ऐसे दुर्गम, एकांत स्थान हैं जहाँ पर कोई आदिवासी ईसाई नहीं बनता तो उसका वहाँ रहना खतरे से खाली नहीं क्योंकि वे लोग समाज की मुख्यधारा से कटे होने के कारण अकेले एवं असहाय पड़ जाते हैं । और विदेशी लोग उन पर धन-जन बल से जोर-जबरदस्ती कर उनका धर्मांतरण कराते हैं । जब हिन्दू संतों द्वारा चलाये गये राष्ट्रीय जागरण अभियानों से उनके सभी हथकंडे पूरी तरह से कारगर

सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं तथा कई करोड़ डालर खर्च करने के बाद भी धर्मांतरित लोगों की निर्धारित संख्या पूरी नहीं कर पा रहे हैं तो फिर उन संतों के ऊपर कीचड़ उछालकर येन केन प्रकारेण लोगों की श्रद्धा डगमगाने के लिए अफवाहें फैला रहे हैं।

जब भारत को हथियाने के और प्रयास असफल हुए तो साधु-संतों पर कीचड़ उछालना आरंभ करके भारतीय जनमानस को गुमराह करने का प्रयास किया जा रहा है। इसका ज्वलंत उदाहरण यह है कि सत्य साँई बाबा पर कुछ ऐसे आरोप विदेशियों द्वारा लगाये गये हैं जिनमें से एक भी आरोप सत्य साबित नहीं किया जा सका है। एक तो हेन्स डी. क्रेकर, जैन्स सेठी एवं कोनी लार्सन जैसे विदेशियों द्वारा लगाये गये आरोप और दूसरे, उनमें से कोई भी आरोप सत्य साबित न होना इसी बात को प्रकट करता है कि यह बदनाम करने की सरासर साजिशमात्र है। विश्व में करोड़ों लोग धूर्त हैं। उनका पूजा-सम्मान संतों जैसा क्यों नहीं होता ? **साँई बाबा को धूर्त कहनेवाले तुम कितने सच्चे हो ?** यह हिन्दू-विरोधी हमला हम कब तक सहन करते रहेंगे ? हम अपनी संस्कृति और अपने धर्म से भ्रष्ट करने की उनकी कुत्सित साजिशों के कब तक शिकार होते रहेंगे ? उनके द्वारा हमारी उदारता, धर्मसहिष्णुता का दुरुपयोग होता रहे और हम भारतवासी इन सबके मूकदर्शक बने रहें ! जरा सोचें।

भारतीय संस्कृति तथा संतों पर मनगढ़ंत आरोप लगानेवालों को जरा अपनी जेबें भी टटोल लेनी चाहिए, अपने धर्माचार्यों की ओर भी एक निगाह डाल लेनी चाहिए। अंग्रेजी दैनिक 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ३ फरवरी २००० के संस्करण में अमेरिका के सैकड़ों रोमन कैथॉलिक पादरियों के एड्स (AIDS) से मरने का समाचार प्रकाशित हुआ था। समाचार के अनुसार अमेरिका में एड्स के रोगियों में तीन-चौथाई ईसाई पादरी हैं। पवित्रता का संदेश फैलानेवाले धर्म-प्रचारकों को 'एड्स' जैसी बीमारी कैसे हो गयी यह प्रश्न ही उनके तथाकथित पवित्रता के नाटक का पर्दाफाश कर देता है।

कुछ माह पूर्व वर्त्तमान पोप के जन्म-स्थान पोलैंड के गदीनिया शहर में छत्तीस वर्षीय वोसिएच नामक कैथॉलिक पादरी को एक बारह वर्षीय बालक के साथ यौन-दुर्व्यवहार करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया। पुलिस को उसके घर से अश्लील विडियो कैसेटें भी मिलीं।

६० के दशक में चर्चों द्वारा चलाये जा रहे अनाथालयों के बच्चों के साथ यौन-दुर्व्यवहार के आरोप में ब्रिटेन के एरिक टेलर नामक पादरी को १२ वर्ष की कैद मिली थी। दुरहम के पादरी एड्रियन मैक्लीश ने तो चार बच्चों के साथ किये अपने कुकृत्य को इन्टरनेट पर प्रचारित भी किया। पुलिस को उसके घर से बच्चों के गन्दे चित्रों का बहुत बड़ा भंडार मिला।

'दैनिक भास्कर' के ३ अक्तूबर २००० के संस्करण में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार हाल ही में पोप द्वारा संत घोषित किये गये पादरियों को चीनी सरकार ने कुकर्मी करार दिया। उन पर कुकर्मों में लिप्त रहने का आरोप है। चीन की सरकार ने १७वीं शताब्दी से लेकर २०वीं शताब्दी तक के पादरियों को बलात्कार और लूट-खसोट करनेवाले तथा पश्चिमी पूँजीवाद का एजेंट बताते हुए बुरा काम करनेवाले पादरी की संज्ञा दी है।

अमेरिका स्थित ओहियो प्रदेश के एक प्रसिद्ध विद्वान् ब्रूस शिलक्सटीन ने वहाँ के प्रसिद्ध दैनिक 'द सिनसिनाटी एन्क्वायर' के माध्यम से कहा है : ''जो समाज से कामुकता एवं अश्लीलता को समाप्त करना चाहते हैं उन्हें इसके लिए पहले चर्चों की जाँच-पड़ताल करनी चाहिए।''

शिलक्सटीन आगे कहते हैं : ''जहाँ तक मुझे ज्ञात है, मैंने किसी अश्लील साहित्य की दुकान या क्लब में किसी महिला या बच्चे की इज्जत के साथ जबरदस्ती खिलवाड़ होते नहीं देखा-सुना लेकिन अमेरिका के समाचार पत्रों में आये दिन ऐसी सैकड़ों खबरें छपती रहती हैं जिनमें महिलाओं तथा बच्चों के साथ पादरियों द्वारा दुष्कर्म किये जाने के विवरण होते हैं।''

श्री सत्य साँई बाबा पर लगाये गए एक भी आरोप की पुष्टि नहीं हुई है जबकि आरोप लगानेवालों के धर्माचार्यों के कुकृत्य तो साबित हो चुके हैं। इसीलिए तो वे जेल की सलाखों के पीछे सड़ रहे हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति ने, हमारे सनातन धर्म ने कभी किसी धर्म, मजहब अथवा पंथ का

विरोध नहीं किया वरन् सागर की तरह विशाल हृदय से सबको अपने में समा लिया। आज उसी दिव्य सनातन धर्म पर कोई कुठाराघात करने पर उतारू हो जाये, हमारी गौरवमयी संस्कृति को विलुप्त करने की साजिश करने लग जाये एवं धर्म के नाम पर भारत को गुलाम करने का षड्यंत्र करने लग जाये तो क्या हम यह सब चुपचाप देखते ही रहेंगे ? क्या धर्मांतरण की आड़ में अपनी मातृभूमि को गुलामी की जंजीर में आबद्ध होने देंगे ? नहीं, कभी नहीं... जागो। भारतवासियों ! जागो।

अब समय आ गया है, हम अपने सनातन धर्म एवं अपनी संस्कृति की गरिमा को पहचानें और उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जायें। उसको नष्ट करने का जो षड्यंत्र किया जा रहा है, उसे असफल कर दें।

और संतों व संस्थाओं को भी संगठित होकर ऐसे कीचड़ उछालनेवालों को मुँहतोड़ जवाब देना चाहिए। लानत है उन्हें जो धर्म व संतों पर कीचड़ उछालते हैं। हिन्दुओं की सहिष्णुता का नाजायज फायदा उठाकर वे कुछ-का-कुछ बोल देते हैं। हिन्दू धर्म के संतों पर झूठे आरोप लगानेवालों में दम हो तो दूसरे धर्म के धर्मगुरुओं एवं आचार्यों पर जरा आक्षेप करें तो मजा चखनी पड़े।

बड़े शर्म की बात है कि अपने संतों पर अपने देश के कुछ निंदक भी अनर्गल बकते एवं छापते-छपाते रहते हैं। भगवान श्रीरामचन्द्रजी से लेकर गुरुनानक, संत कबीर, गोस्वामी तुलसीदासजी एवं आज तक के सच्चे संतों पर निंदकों ने इल्जाम लगाये हैं। संतों का जवाब है :

इल्ज़ाम लगानेवालों ने, इल्ज़ाम लगाये लाख मगर।
तेरी सौगात समझकर हम, सिर पर उठाये जाते हैं॥

- संपादक
डॉ. प्रे. खो. मकवाणा

सैकड़ों पादरी 'एड्स' की बीमारी से मरे, ऐसा तो अखबारों में भी आता है। धन्य है भारत की संस्कृति जिसमें लाखों-करोड़ों साधु-संत हैं फिर भी कभी सुनने में नहीं आया कि सैकड़ों साधु 'एड्स' की बीमारी से मरे हों।

एकादशी माहात्म्य

[षट्तिला एकादशी : २० जनवरी २००१]

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पूछा : ''भगवन् ! माघ मास के कृष्ण पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ? उसके लिये कैसी विधि है ? तथा उसका फल क्या है ? कृपा करके ये सब बातें हमें बताइये।''

श्री भगवान बोले : ''नृपश्रेष्ठ ! माघ मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी 'षट्तिला' के नाम से विख्यात है, जो सब पापों का नाश करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य ने इसकी जो पापहारिणी कथा दाल्भ्य से कही थी उसे सुनो।

दाल्भ्य ने पूछा : 'ब्रह्मन् ! मृत्युलोक में आये हुए प्राणी प्राय: पापकर्म करते रहते हैं। उन्हें नरक में न जाना पड़े, इसके लिये कौन-सा उपाय है ? बताने की कृपा करें।'

पुलस्त्यजी बोले : 'महाभाग ! माघ मास आने पर मनुष्य को चाहिए कि वह नहा-धोकर पवित्र हो इन्द्रियसंयम रखते हुए काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और चुगली आदि बुराइयों को त्याग दे। देवाधिदेव भगवान का स्मरण करके जल से पैर धोकर भूमि पर पड़े हुए गोबर का संग्रह करे। उसमें तिल और कपास मिलाकर एक सौ आठ पिंडिकाएँ बनाये। फिर माघ में जब आर्द्रा या मूल नक्षत्र आये, तब कृष्ण पक्ष की एकादशी करने के लिये नियम ग्रहण करे। भली-भाँति स्नान करके पवित्र हो शुद्ध भाव से देवाधिदेव श्रीविष्णु की पूजा करे। कोई भूल हो जाने पर श्रीकृष्ण का नामोच्चारण करे। रात को जागरण और होम करे। चन्दन, अरगजा, कपूर,

नैवेद्य आदि सामग्री से शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर श्रीहरि की पूजा करे । तत्पश्चात् भगवान का स्मरण करके बारम्बार श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए कुम्हड़े, नारियल अथवा बिजौरे के फल से भगवान को विधिपूर्वक पूजकर अर्घ्य दे । अन्य सब सामग्रियों के अभाव में सौ सुपारियों के द्वारा भी पूजन और अर्घ्यदान किये जा सकते हैं । अर्घ्य का मंत्र इस प्रकार है :

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ।

'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप बड़े दयालु हैं । हम आश्रयहीन जीवों के आप आश्रयदाता होइये । हम संसार-समुद्र में डूब रहे हैं, आप हम पर प्रसन्न होइये । कमलनयन ! विश्वभावन ! सुब्रह्मण्य ! महापुरुष ! सबके पूर्वज ! आपको नमस्कार है ! जगत्पते ! मेरा दिया हुआ अर्घ्य आप लक्ष्मीजी के साथ स्वीकार करें ।'

(४४.१८-२०)

तत्पश्चात् ब्राह्मण की पूजा करे । उसे जल का घड़ा, छाता, जूता और वस्त्र दान करे । दान करते समय ऐसा कहे : 'इस दान के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ।' अपनी शक्ति के अनुसार श्रेष्ठ ब्राह्मण को काली गौ का दान करे । द्विजश्रेष्ठ ! विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह तिल से भरा हुआ पात्र भी दान करे । उन तिलों के बोने पर उनसे जितनी शाखाएँ पैदा हो सकती हैं, उतने हजार वर्षों तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । तिल से स्नान होम करे, तिल का उबटन लगाये, तिल मिलाया हुआ जल पिये, तिल का दान करे और तिल को भोजन के काम में ले ।'

इस प्रकार हे नृपश्रेष्ठ ! छः कामों में तिल का उपयोग करने के यह एकादशी 'षट्तिला' कहलाती है, जो सब पापों का नाश करनेवाली है ।''

('पद्म पुराण' से)

सेहत और सावधानियाँ

आयुर्वेद के तीन उप स्तम्भ हैं : आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य ।

जीवन में सुख-शांति व समृद्धि प्राप्त करने के लिए स्वस्थ शरीर की नितान्त आवश्यकता है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन और विवेकवती कुशाग्र बुद्धि प्राप्त हो सकती है । मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए उचित निद्रा, श्रम, व्यायाम और संतुलित आहार अति आवश्यक हैं । पाँचों इन्द्रियों के विषयों के सेवन की गलतियों के कारण ही मनुष्य रोगी होता है । इसमें भोजन की गलतियों का सबसे अधिक महत्त्व है ।

गलत विधि से गलत मात्रा में अर्थात् आवश्यकता से अधिक या बहुत कम भोजन करने से, या अहितकर भोजन के सेवन से मन्दाग्नि और मन्दाग्नि से कब्ज रहने लगता है । तब आँतों में रुका हुआ मल सड़कर आम व दूषित रस बनाने लगता है । यह दूषित रस ही सारे शरीर में फैलकर विविध प्रकार के रोग उत्पन्न करता है । उपनिषदों में भी कहा गया है : **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः ।** शुद्ध आहार से मन शुद्ध रहता है । साधारणतः सभी व्यक्तियों के लिए आहार के कुछ नियमों को जानना अत्यन्त आवश्यक है । जैसे,

(१) प्रातःकाल १० से १२ और सायंकाल ६ से ८ का समय भोजन के लिए श्रेष्ठ माना जाता है । एक बार आहार ग्रहण करने के बाद दूसरी बार आहार ग्रहण करने के बीच कम-से-कम तीन घण्टों का अन्तर अवश्य रहना चाहिए क्योंकि इन तीन घण्टों की अवधि में आहार की पाचन-क्रिया संपन्न होती है । यदि दूसरा आहार इसी बीच ग्रहण करें तो पूर्वकृत आहार का कच्चा रस इसके साथ मिलकर दोष उत्पन्न कर देगा ।

(२) रात्रि में आहार के पाचन में समय अधिक लगता है इसीलिए रात्रि को प्रथम प्रहर में ही भोजन

कर लेना चाहिए। शीत ऋतु में रात बड़ी होने के कारण सुबह जल्दी भोजन कर लेना चाहिए और गर्मियों में दिन बड़े होने के कारण सायंकाल का भोजन जल्दी कर लेना उचित है।

(३) अपनी प्रकृति के अनुसार यथावश्यक मात्रा में भोजन करना चाहिए। आहार की मात्रा व्यक्ति की पाचकाग्नि और शारीरिक बल के अनुसार निर्धारित होती है। स्वभाव से ही हल्के पदार्थ जैसे कि चावल, मूँग, दूध अधिक मात्रा में ग्रहण करना सम्भव है परन्तु उड़द, चना तथा पिट्ठी के पदार्थ स्वभावतः भारी होते हैं, जिन्हें कम मात्रा में लेना ही उपयुक्त रहता है।

(४) आहार ग्रहण करते समय सर्वप्रथम मधुर, बीच में खट्टे और नमकीन तथा अन्त में तीखे, कड़वे और कसैले पदार्थों का सेवन करना उचित है।

भोजन के पहले अदरक और सेंधा नमक का सेवन सदा हितकारी होता है। वह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और भोजन के प्रति रुचि पैदा करता है तथा जीभ एवं कण्ठ की शुद्धि करता है।

(५) भोजन गरम और स्निग्ध होना चाहिए। गरम भोजन स्वादिष्ट लगता है, पाचकाग्नि को तेज करता है और भोजन शीघ्र पच जाता है। यह वायु को निकाल देता है और कफ को सुखा देता है। स्निग्ध भोजन शरीर को मजबूत बनाता है, उसका बल बढ़ाता है और वर्ण में भी निखार लाता है।

(६) बहुत जल्दी-जल्दी अथवा बहुत देर तक, बोलते हुए अथवा हँसते हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

(७) भोजन के बीच-बीच में प्यास लगने पर थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए परन्तु बाद में पीना हानिकर है। भोजन के बाद तक्र (छाछ) का सेवन हितकर है और अनेक रोगों से बचानेवाला है।

(८) अच्छी तरह भूख एवं प्यास लगना, शरीर में उत्साह उत्पन्न होना एवं हल्कापन महसूस होना, शुद्ध डकार आना और दस्त साफ आना- ये आहार के ठीक प्रकार से पाचन होने के लक्षण हैं।

[धन्वन्तरि आरोग्य केन्द्र, साबरमती, अमदावाद।]

दालचीनी

भारत में दालचीनी के वृक्ष हिमालय तथा पश्चिमी तट पर पाये जाते हैं। इस वृक्ष की छाल 'दालचीनी' के नाम से प्रसिद्ध है।

यह रस में तीखी, कड़वी तथा मधुर होती है। उष्ण-तीक्ष्ण होने के कारण दीपन, पाचन और विशेष रूप से कफ का नाश करनेवाली है। यह अपने मधुर रस से पित्त का शमन और उष्ण वीर्य होने से वात का शमन करती है। अतः त्रिदोषशामक है।

❊ औषध-प्रयोग ❊

१. मुँह के रोग : यह मुख की शुद्धि तथा उसके दुर्गंध का नाश करनेवाली है। अजीर्ण अथवा ज्वर के कारण गला सूख गया हो तो इसका एक टुकड़ा मुँह में रखने से प्यास बुझती है तथा उत्तम स्वाद उत्पन्न होता है। इससे मसूढ़े भी मजबूत होते हैं।

२. दंतशूल व दंतकृमि : इसके तेल में भिगोया हुआ रूई का फाहा दाँत के मूल में रखने से दंतशूल तथा दंतकृमियों का नाश होता है। ५ भाग शहद में इसका एक भाग चूर्ण मिलाकर दाँतों पर लगाने से भी दंतशूल में राहत मिलती है।

३. पेट के रोग : १ चम्मच शहद के साथ इसका १.५ ग्राम (एक चने जितनी मात्रा) चूर्ण लेने से पेट का अल्सर नष्ट हो जाता है।

दालचीनी, इलायची और तेजपत्र का समभाग मिश्रण करें। इसका १ ग्राम चूर्ण १ चम्मच शहद के साथ लेने से पेट के अनेक विकार जैसे मंदाग्नि, अजीर्ण, उदरशूल आदि में राहत मिलती है।

४. सर्दी, खाँसी, जुकाम : इसका १ ग्राम चूर्ण एवं १ ग्राम सितोपलादि चूर्ण १ चम्मच शहद के साथ लेने से सर्दी और खाँसी में तुरन्त राहत मिलती है।

५. क्षयरोग (टी. बी.) : इसका १ ग्राम चूर्ण १ चम्मच शहद में मिलाकर सेवन करने से कफ आसानी से छँटने लगता है एवं खाँसी से राहत मिलती है। दालचीनी का यह सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग है।

६. रक्तविकार एवं हृदयरोग : दालचीनी रक्त की शुद्धि करनेवाली है। इसका १ ग्राम चूर्ण १ ग्राम शहद में मिलाकर सेवन करने से अथवा दूध में मिलाकर पीने से रक्त में उपस्थित कोलेस्टरॉल की अतिरिक्त मात्रा घटने लगती है। अथवा, इसका आधा से एक ग्राम चूर्ण २०० मि. ली. पानी में धीमी आँच पर उबालें। १०० मि. ली. पानी शेष रहने पर उसे छानकर पी लें। इससे भी कोलेस्टरॉल की अतिरिक्त मात्रा घटती है।

गरम प्रकृतिवाले लोग पानी में दूध मिश्रित कर इसका उपयोग कर सकते हैं। इस प्रयोग से रक्त की शुद्धि होती है एवं हृदय को बल प्राप्त होता है।

७. सामान्य वेदना : इसका एक चम्मच (छोटा) चूर्ण २० ग्राम शहद एवं ४० ग्राम पानी में मिलाकर स्थानिक मालिश करने से कुछ ही मिनटों में वात के कारण होनेवाले दर्द से छुटकारा मिलता है।

इसका एक ग्राम चूर्ण और दो चम्मच शहद १ कप गुनगुने पानी में मिलाकर नित्य सुबह-शाम पीने से संधिशूल में राहत मिलती है।

वेदनायुक्त सूजन तथा सिरदर्द में इसका चूर्ण गरम पानी में मिलाकर लेप करें।

बिच्छू के दंशवाली जगह पर इसका तेल लगाने से दर्द कम होता है।

८. वृद्धावस्था : बुढ़ापे में रक्तवाहिनियाँ कड़क और रुक्ष होने लगती हैं तथा उनका लचीलापन कम होने लगता है। एक चने जितना दालचीनी का चूर्ण शहद में मिलाकर नियमित सेवन करने से इन लक्षणों से राहत मिलती है। इस प्रयोग से त्वचा पर झुर्रियाँ नहीं पड़तीं, शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है और श्रम से जल्दी थकान नहीं आती।

९. मोटापा : इसके १.५ चम्मच चूर्ण का काढ़ा बना लें। उसमें १ चम्मच शहद मिलाकर सुबह खाली पेट तथा सोने से पहले पियें। इससे मेद कम होता है।

१०. त्वचा-विकार : दालचीनी का चूर्ण और शहद समभाग कर दाद, खाज तथा खुजलीवाले स्थान पर लेप करने से कुछ ही दिनों में त्वचा के ये विकार मिट जाते हैं।

सोने से पूर्व इसका १ चम्मच चूर्ण ३ चम्मच शहद में मिलाकर मुँह की खीलों पर अच्छी तरह से मसलें। सुबह चने का आटा अथवा उबटन लगाकर गरम पानी से चेहरा साफ कर लें। इससे खील-मुँहासे मिटते हैं।

११. बालों का झड़ना : दालचीनी का चूर्ण, शहद और गरम ऑलिव्ह तेल १-१ चम्मच लेकर मिश्रित करें और उसे बालों की जड़ों में धीरे-धीरे मालिश करें। पाँच मिनट के बाद सिर को पानी से धो लें। इस प्रयोग से बालों का झड़ना कम होता है।

सावधानी : दालचीनी उष्ण-तीक्ष्ण तथा रक्त का उत्क्लेश करनेवाली है अर्थात् रक्त में पित्त की मात्रा बढ़ानेवाली है। इसके अधिक सेवन से शरीर में गरमी उत्पन्न होती है। अतः गरमी के दिनों में इसका लगातार सेवन न करें। इसके अत्यधिक उपयोग से नपुंसकता आती है।

*

सेवफल

सेवफल भोजन पचाता है, खुद भी जल्दी पचता है। वात-पित्त से होनेवाले रोगों का भी शमन करता है। दाँत और मसूढ़ों में मजबूती लाता है। अग्नि पर सेंककर खाने से पेट के सभी रोगों का शमन करता है। भोजन बंद करके दिन में सेव ही खाना शुरू कर दें तो पेट व दाँत की बीमारियों एवं कमजोरी में लाभ होता है।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।]

अधिक टीवी देखने से बच्चों को मिर्गी...

अमृतसर मेडिकल कॉलेज के स्नायुतंत्र विभाग के अध्यक्ष डॉ. अशोक उप्पल के अनुसार, ''पश्चिमी देशों में टेलीविजन अधिक देखने के कारण बच्चों में मिर्गी का रोग बहुत बढ़ चुका है और अब भारत में भी ऐसे कई समाचार सुनने में आ रहे हैं। देश में अनेक चैनलों के प्रसारण से बच्चे पहले की अपेक्षा अधिक समय तक टीवी देखते हैं। इसके दुष्परिणामस्वरूप उनमें मिर्गी रोग से ग्रस्त होने के मामले बढ़ रहे हैं।''

डॉ. उप्पल ने उपरोक्त वक्तव्य अमृतसर में हुए 'अखिल भारतीय स्नायु सम्मेलन' में व्यक्त किये। सम्मेलन में यह मुद्दा विशेषरूप से चर्चित रहा।

सम्मेलन में भाग लेनेवाले विभिन्न डॉक्टरों ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा : ''टेलीविजन में प्रसारित कार्यक्रमों को बड़ों की अपेक्षा बच्चे अधिक ध्यानपूर्वक देखते हैं। टेलीविजन पर तेजी से बदल रहे दृश्यों का उनके मस्तिष्क में स्थित हारमोन्स पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे उनका दिमागी सन्तुलन बिगड़ जाता है। फलतः मिर्गी, अशांति, तनाव जैसे रोगों का होना तथा क्रोधी व चिड़चिड़ा स्वभाव बनना साधारण बात हो जाती है।

बच्चों के अतिरिक्त टीवी के अधिक शौकीन वयस्कों में भी इस प्रकार की समस्या पैदा हो सकती है, विशेषकर देर रात तक टीवी देखनेवालों को इसके होने की अधिक संभावना रहती है।

श्रीआसारामायण के १०८ पाठ से...

दस वर्ष से मेरे कोई संतान नहीं थी। जब पूज्यश्री से दीक्षा लेने के पश्चात् आश्रम से प्रकाशित 'श्रीआसारामायण' पुस्तिका मेरे हाथ लगी और मैंने उसमें पढ़ा कि : **'१०८ जो पाठ करेंगे, उनके सारे काज सरेंगे।'** ...तो अपने घर में श्रीआसारामायण के १०८ पाठ किये जिसके प्रभाव से इसी वर्ष मेरे घर एक पुत्र ने जन्म लिया है। देखने में वह अत्यंत तेजस्वी और शांतिप्रिय है। ऐसा लगता है मानों, साक्षात् नारायण ने ही अवतार लिया है। इसीलिए उसका नाम 'नारायण' ही रखा है। यह हमारे लिए पूज्य गुरुदेव का परम प्रसाद है। जब उसे पूज्यश्री के सत्संग में ले जाते हैं तो वह वहाँ घण्टों शांत पड़ा रहता है मानों, वह भी सत्संग का आनंद ले रहा हो। यह गुरुदेव की कृपा नहीं तो और क्या है ? हमारे लिए तो यह साखी सिद्ध हो गई है कि :

यहाँ की फ़िक्र वहाँ का ख्याल रखा है।
अकेले ही सारे जहाँ को सँभाल रखा है ॥

- सुभाष ठक्कर
डबुआ कॉलोनी, फरीदाबाद (हरियाणा)।

*

सारस्वत्य मंत्रदीक्षा का प्रभाव

मैंने अगस्त '९९ में महाराणा प्रताप कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी, ग्वालियर में इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग द्वितीय वर्ष में प्रवेश लिया। चूँकि मैंने डिप्लोमा पास करके बी.ई. द्वितीय वर्ष में प्रवेश लिया था इसलिए मुझे ९ प्रश्नपत्रों की परीक्षा देनी थी, जबकि बाकी लड़कों को मात्र ५ प्रश्नपत्रों की ही परीक्षा देनी थी। समय काफी कम था। सौभाग्य से डेढ़ महीने बाद ग्वालियर में गुरुजी का सत्संग-कार्यक्रम आयोजित हुआ। गुरुजी के चार दिनों के सत्संग से मैं इतना प्रभावित हुआ कि मैंने गुरुजी की असीम कृपा से ३१ अक्तूबर '९९ को सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद मैंने सिगरेट, शराब, गुटखा, मांस-मछली आदि खाना-पीना छोड़ दिया। इसके तीन महीने बाद मेरी परीक्षा हुई। मैंने सभी प्रश्न गुरुजी का ध्यान करके हल किये। अभी कुछ दिनों पहले परिणाम आया है। मैंने अपने Electrical Branch (विद्युत शाखा) में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। मुझे सभी प्रश्न-पत्रों में अच्छे अंक प्राप्त हुए हैं।

मेरे दिल दिलबर ने मुझमें ज्ञान का प्रकाश जगा दिया। मेरे पास शब्द नहीं हैं, मैं क्या कहूँ ? जय सद्गुरुदेव !

- पंकज प्रसून
सरस्वती नगर, यूनिवर्सिटी रोड, ग्वालियर (म.प्र.).

*

ऑपरेशन की जरूरत नहीं पड़ी

अजमेर की अनेक महिला चिकित्सकों ने मेरी सोनोग्राफी की रिपोर्ट देखकर मुझे 'गायनिक ऑपरेशन' कराने की सलाह दी थी। अंततः ऑपरेशन का दिन भी निश्चित किया गया। परन्तु मेरे पुत्र को इन्जीनियरिंग में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए जर्मनी जाना पड़ा अतः ऑपरेशन का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। एक दिन मेरे पड़ोसी ने जब मुझे यह सलाह दी कि : 'आश्रम की पुस्तिका 'श्रीआसारामायण' का पाठ करो, भगवान सब ठीक करेंगे।' ...तो मैंने 'श्रीआसारामायण' का १०८ बार पाठ करने का संकल्प किया। इसी बीच जब मेरे पुत्र का जर्मनी से वापस आने का कार्यक्रम बना तब मैंने बेहतर ऑपरेशन के लिए जयपुर में डॉक्टर से सम्पर्क किया। पुनः परीक्षण करने के बाद डॉक्टरों ने कहा कि : ''हालत सामान्य है। गर्भाशय में सूजन मात्र है, अब उसमें गाँठ नहीं है। अतः दवा से ठीक हो जायेगा, ऑपरेशन की जरूरत नहीं है।''

फिर अजमेर में उन्हीं चिकित्सकों से परीक्षण करवाया जो पहले 'गायनिक ऑपरेशन' की सलाह देते थे। परीक्षण के बाद उन्होंने भी कहा कि : 'ऑपरेशन की बिल्कुल जरूरत नहीं है, केवल दवा की ही चिकित्सा काफी है।'

सचमुच, ऑपरेशन टलना मेरे लिए एक चमत्कारिक घटना है। 'श्रीआसारामायण' के १०८ पाठ करने के संकल्प मात्र का यह फल है। *- श्रीमती विद्या लाटा*
गुलाबबाड़ी, अजमेर।

* संस्था समाचार *

दाहोद : संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद द्वारा पूज्यश्री की प्रेरणा से दाहोद व धानपुर जिले (गुज.) में ९० गाँवों के ५९८ गरीब व निराश्रितों को राशन कार्ड प्रदान किये गये। इस कार्ड के आधार पर उन्हें प्रतिमाह निःशुल्क अनाज दिया जायेगा। इस दैवी कार्य के प्रथम चरण में दाहोद जिले के चौसाला, कतवारा, आबलोद व धानपुर जिले के झाबु, नवानगर, कालियावाड आदि ग्रामों में ६२९० कि. ग्रा. अनाज निःशुल्क वितरित किये गये। अब इन २ जिलों के ७७ गाँवों में ७५४८० कि. ग्रा. अनाज प्रतिवर्ष निःशुल्क वितरित किये जाने की सुनियोजित सुव्यवस्था आश्रम द्वारा की गई है। ४ केन्द्र स्थापित किये जा चुके हैं।

चौसाला केन्द्र के अन्तर्गत राणापुर, खरोदा, भाटीवाड़ा, कालीग्राम, डोकी, रेटिया, डुंगरा, कांकरी, खीड़वा, बोरवानी, काली तलाई, खजूरी व मोवालिया ग्राम के कार्डधारक अनाज प्राप्त करेंगे। रूपये-पैसे नहीं भेजें। आश्रम में कर-कसर से व्यवस्था सुंदर बनी हुई है।

आश्रम का एक सेवाकार्य ऐसा भी...

वैसे तो आश्रम एवं इसकी सेवा समितियों द्वारा गरीबों-असहायों में निःशुल्क मासिक अनाज वितरण, वस्त्र एवं बर्तन वितरण, भंडारा आदि सेवाकार्य सामान्य एवं आपद काल में देश भर में यत्र-तत्र सम्पादित होते ही रहते हैं किन्तु यदि बाढ़, तूफान, भूकंप आदि से प्रभावित क्षेत्रों के गरीब लोग बेघर हो जाते हैं तो उनके लिए घर बनाकर उन्हें अर्पित भी किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, नवम्बर १९९७ में जबलपुर में आये भूकंप से तेवर ग्राम के बेघर हुए गरीब परिवारों को पक्के मकान बनाकर अर्पित किये गये। गुजरात राज्य के मेहसाणा, बीजापुर एवं विसनगर में आयी बाढ़ से बेघर हुए गरीबों को पक्के मकान बनाकर निःशुल्क अर्पित किये गये। अकेले विसनगर में २४ पक्के घर निर्मित कराकर अर्पित किये गये। बड़ौदा जिले में दिनांक : ११ अक्तूबर '९९ को चाँणसद गाँव के १८ तथा ३० सितम्बर २००० को भायली गाँव के २० गृहविहीन कुटुंबियों को पक्के मकान बनाकर अर्पित किये गये। कोटा में भी आश्रम के पास वाले गाँव में बेघर परिवारों को मकान बनाकर अर्पित किये गये।

कर-कसर से सारी सेवाएँ हो जाती हैं इसलिए कृपया चीज-वस्तु, रूपये-पैसे न भेजें।

सूरत (गुज.) : ९ से १२ दिसम्बर। वरीयाव रोड, जहाँगीरपुरा स्थित संत श्री आसारामजी आश्रम में चार दिवसीय 'मौन दर्शन ध्यान योग साधना शिविर' संपन्न हुआ। पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में आयोजित सैकड़ों ध्यान योग शिविरों से विलक्षण यह शिविर अभूतपूर्व एवं साधकों के लिए अलभ्य अवसर था।

ज्ञान-भक्ति व योगमार्ग में प्रतिष्ठित गुरुदेवश्री की उपस्थिति व दर्शन मात्र से विशाल सत्संग-भवन में उपस्थित मानवमेदिनी आनंदित हो उठी। भगवान शिवजी के वचनों का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था :

यस्य दर्शनमात्रेण मनसः स्यात् प्रसन्नता।
स्वयं भूयात् धृतिश्शांतिः स भवेत परमो गुरुः ॥

देश-विदेश से आये हुए पूनम व्रतधारी साधक-साधिकाओं को साधना में उन्नति के कुछ संकेत पू. गुरुदेवश्री ने लिखकर दिये जिसे श्री सुरेशानंदजी पढ़कर सुनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री के पूर्व प्रवचनों की ऑडियो कैसेट पूज्यश्री की पावन उपस्थिति में ही लगाई गई। 'हृदय की दिव्य वाणी' यह कैसेट सुनकर उपस्थित साधक-समुदाय भाव-विभोर हो उठा। उनमें अष्टसात्त्विक भाव हिलोरें लेने लगे। समस्त मण्डपाकाश दिव्य भावों से आच्छादित हो उठा। गुरुदेवश्री के पावन सान्निध्य में आयोजित इस अपूर्व मौन साधना शिविर का संपूर्ण लाभ साधक-साधिकाओं को मिला।

पूज्य बापू का मौन-दर्शन कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
११ से १४ जनवरी २००१	अमदावाद (गुज.)	उत्तरायण शिविर	संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद (गुज.).	(०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

पूर्णिमा दर्शन : ९ जनवरी २००१ अमदावाद (गुज.) में।

पूज्यश्री के सत्संग में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के उद्गार...

भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह

''पूज्य बापूजी के भक्तिरस में डूबे हुए श्रोता भाई-बहनों ! मैं पूज्य बापूजी का आशीर्वचन सुनने आया हूँ । मैं उनके दर्शन और आशीर्वाद के लिए लालायित था । मैंने पहले उनका दर्शन पानीपत में किया था । संत-महात्माओं के दर्शन तभी होते हैं, उनका सान्निध्य तभी मिलता है जब कोई पुण्य जागृत होता है । इस जन्म में मैंने कोई पुण्य किया हो इसका मेरे पास कोई हिसाब तो नहीं है किन्तु जरूर यह पूर्वजन्म के पुण्यों का ही फल है जो बापूजी के दर्शन हुए । उस दिन बापूजी ने जो कहा, वह अभी तक मेरे हृदय-पटल पर अंकित है ।

देश भर की परिक्रमा करते हुए जन-जन के मन में अच्छे संस्कार जगाना, यह एक ऐसा परम राष्ट्रीय कर्त्तव्य है, जिसने हमारे देश को आज तक जीवित रखा है और इसके बल पर हम उज्ज्वल भविष्य का सपना देख रहे हैं... उस सपने को साकार करने की शक्ति-भक्ति एकत्र कर रहे हैं । पूज्य बापूजी सारे देश में भ्रमण करके जागरण का शंखनाद कर रहे हैं, सर्वधर्मसमभाव की शिक्षा दे रहे हैं, संस्कार दे रहे हैं तथा अच्छे और बुरे में भेद करना सिखा रहे हैं । हमारी जो प्राचीन धरोहर थी और हम जिसे लगभग भूलने का पाप कर बैठे थे, बापूजी हमारी आँखों में ज्ञान का अंजन लगाकर उसको फिर से हमारे सामने रख रहे हैं । बापूजी ने कहा कि ईश्वर की कृपा से कण-कण में व्याप्त एक महान् शक्ति के प्रभाव से जो कुछ घटित होता है, उसकी छानबीन और उस पर अनुसंधान करना चाहिए ।

पूज्य बापूजी ने कहा कि जीवन के व्यापार में से थोड़ा समय निकालकर सत्संग में आना चाहिए । पूज्य बापूजी उज्जैन में थे तब मेरी जाने की बहुत इच्छा थी लेकिन कहते हैं न, कि दाने-दाने पर खानेवाले की मोहर होती है वैसे ही संत-दर्शन के लिए भी कोई मुहूर्त होता है । आज यह मुहूर्त आ गया है । यह मेरा क्षेत्र है । पूज्य बापूजी ने चुनाव जीतने का तरीका भी बता दिया है । आज देश की दशा ठीक नहीं है । बापूजी का प्रवचन सुनकर बड़ा बल मिला है । यह तो बापूजी की कृपा है कि श्रोता को वक्ता बना दिया और वक्ता को नीचे से ऊपर चढ़ा दिया । जहाँ तक ऊपर चढ़ाया है वहाँ तक ऊपर बना रहूँ इसकी चिंता भी बापूजी को करनी पड़ेगी । मैं लोकसभा का सदस्य होने के नाते अपनी ओर से एवं लखनऊ की जनता की ओर से बापूजी के चरणों में विनम्र होकर नमन करना चाहता हूँ । उनका आशीर्वाद हमें मिलता रहे, उनके आशीर्वाद से प्रेरणा पाकर बल प्राप्त करके हम कर्त्तव्य के पथ पर निरन्तर चलते रहें ।''
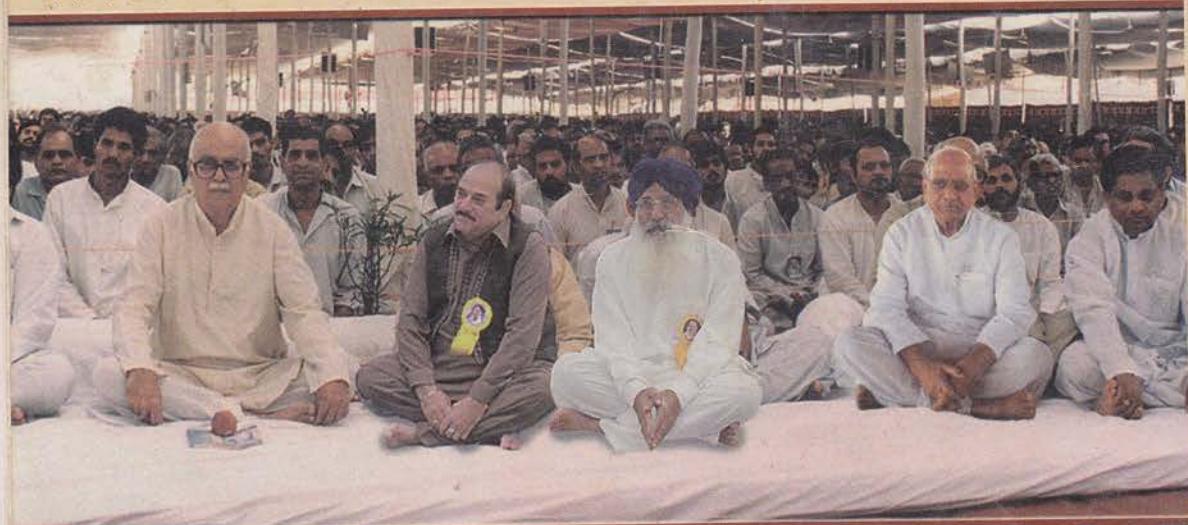
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू का सत्संग सुनते हुए धनभागी हो रहे हैं । (बाँयें से) भारत के गृहमंत्री श्री लालकृष्ण अडवाणी, पंजाब के राज्यपाल श्री पी. के. एन. छिब्बर, पंजाब के मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिंह बादल, गुजरात के राज्यपाल श्री सुंदर सिंह भंडारी तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष श्री दिलीप सिंह भुरिया ।

DELHI REGD. NO. DL-11015/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2001 BYCULLA STG WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001
POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM MUMBAI 9th & 10th OF EVERY MONTH. POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.